अथाष्टाविंशोऽध्यायः

—:o:—

ऋषिः—**बृहदुक्थो वामदेवः**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

चर्षणीसहाम् ओजिष्ठः

होता॑ यक्षत्स॒मिधेन्द्र॑मि॒डस्प॒दे नाभा॑ पृथि॒व्याऽअधि॑।
दि॒वो वर्ष्म॑न्त्समि॑ध्यत॒ऽओजि॑ष्ठश्चर्षणी॒सहा॑ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥१॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला, **समिधा**=ज्ञान की दीप्ति से **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **यक्षत्**=अपने साथ जोड़ता है, इसके लिए आवश्यक है कि हम (क) त्यागवृत्तिवाले बनें, दानपूर्वक अदनवाले हों, सदा यज्ञशेष का सेवन करें तथा (ख) अपने ज्ञान को दीप्त करें। २. 'प्रभु का सम्पर्क कहाँ होगा? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि (क) **इडस्पदे**=वाणी के स्थान में, अर्थात् जब हम ज्ञान की वाणियों का अध्ययन करेंगे, तथा (ख) **पृथिव्याः**=इस शरीर के (पृथिवी शरीरम्) **नाभौ अधि**=केन्द्र में। शरीर का केन्द्र 'हृदय' है। एक ओर अन्नमयकोश व प्राणमयकोश हैं तो दूसरी ओर विज्ञानमय व आनन्दमयकोश हैं, ठीक मध्य में मनोमयकोश है। इस मनोमयकोश को वेद में **'विकोशं मध्यमं युव'** इन शब्दों में मध्यमकोश कहा है। इस मध्यमकोश में ही प्रभु का दर्शन होना है (ग) **दिवः वर्ष्मन्**=द्युलोक के वर्षिष्ठ प्रदेश में। द्युलोक मस्तिष्क है, इसका वर्षिष्ठ सर्वोत्तम प्रदेश 'सहस्रारचक्र' है, इसी स्थल में 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' की उत्पत्ति होती है और प्रभु का साक्षात्कार होता है। एवं, **समिध्यते**=वे प्रभु दीप्त किये जाते हैं (क) ज्ञान की वाणियों की चर्चाओं में (ख) हृदयदेश में, तथा (ग) ऋतम्भरा प्रज्ञा के उत्पन्न होने पर मस्तिष्करूप द्युलोक के सर्वोत्तम प्रदेश में। ३. प्रभु-दर्शन होने पर यह भक्त **चर्षणीसहाम्**=श्रमशील (चर्षणयः कर्षणयः) तथा शत्रुओं का पराभव करनेवालों में **ओजिष्ठम्**=ओजस्वितम बनता है, अर्थात् यह सर्वाधिक श्रमशील व कामादि का विजेता होता है। वस्तुतः ये दोनों बातें ही इसके ओजस्वी बनने का रहस्य हैं। ४. **आज्यं वेतु**='तेजो वा आज्यम्' तां० १२।१०।१२ 'रेतः आज्यम्' श० १।३।१।१८ यह प्रभुभक्त शक्ति का पान करनेवाला हो। प्रायः सोम के पान का उल्लेख होता है, यहाँ सोम के स्थान में 'आज्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। आज्य की भी भावना 'शक्ति' ही है। प्रभुभक्त आज्य का, शक्ति का पान करनेवाला बनता है, अतः मन्त्र की समाप्ति पर प्रभु कहते हैं कि **होतः**=हे दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=प्रभु से मेल कर। यह मेल ही तेरी शक्ति का स्रोत बनेगा।

भावार्थ—होता बनकर, ज्ञान की वाणियों की चर्चा करते हुए हम हृदयदेश में प्रभु का दर्शन करने का प्रयत्न करें। इससे हमें शक्ति प्राप्त होगी, हम श्रमशील व शत्रु-विजेताओं के अग्रेणी बनेंगे।

ऋषिः—**बृहदुक्थो वामदेवः**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृज्जगती**। स्वरः—**निषादः**।

मधुमत्तम मार्ग

होता॑ यक्षत्तनूनपा॑तमू॒तिभि॒र्जेता॑र॒मप॑राजितम्।
इन्द्रं॑ दे॒वꣳस्व॒र्विदं॑ प॒थिभि॒र्मधु॑मत्तमै॒र्नरा॒शꣳसे॑न॒ तेज॑सा॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥२॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **यक्षत्**=उस प्रभु का अपने साथ सम्पर्क करता है जो **तनूनपातम्**=शरीर को न गिरने देनेवाले हैं, **ऊतिभिः**=रक्षणों के द्वारा शरीर को व्याधियों से बचानेवाले हैं, **जेतारम्**=सदा हमारे काम-क्रोधादि शत्रुओं को जीतनेवाले हैं और **अपराजितम्**=कभी पराजित नहीं होते। **इन्द्रम्**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले व परमैश्वर्य को प्राप्त करानेवाले हैं, **देवम्**=सब दिव्य गुणों के पुञ्ज, ज्ञान से देदीप्यमान व सब ऐश्वर्यों के देनेवाले हैं (देवः दीव्यति, द्योतनाद् दानाद्वा), **स्वर्विदम्**=प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाले हैं। २. वे प्रभु 'स्वर्विद्' हैं—सुख प्राप्त कराते हैं, परन्तु कब? जबकि हम (क) **मधुमत्तमैः पथिभिः**=अत्यन्त मधुर मार्गों से जीवनयात्रा में गति करते हैं। जब हमारे सब कर्मों में माधुर्य होता है तथा (ख) **नराशंसेन**=(नरैः आशंसनीयेन) मनुष्यों से प्रशंसा करने योग्य **तेजसा**=तेज के द्वारा। जब हम तेजस्वी बनते हैं, और हमारा यह तेज प्रशंसनीय होता है। (ग) इसीलिए भक्त को चाहिए कि **आज्यस्य वेतु**=तेज का पान करने का प्रयत्न करे। तेज को अपने में सुरक्षित करे। इस प्रकार वीर्य को शरीर में सुरक्षित करते हुए **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=उस प्रभु का अपने साथ मेल कर।

भावार्थ—प्रभु हमारे शरीर को नीरोग बनानेवाले हैं। हमारे शत्रुओं को जीतनेवाले हैं। हम मधुर मार्गों से चलते हैं और प्रशंसनीय तेजवाले होते हैं तो वे प्रभु हमें सुखी करते हैं। हमें चाहिए कि हम वीर्य को शरीर में सुरक्षित करते हुए दान की वृत्तिवाले बनें और प्रभु से अपना मेल करें।

ऋषिः—**बृहदुक्थो वामदेवः**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**। स्वरः—**पञ्चमः**।

वज्रहस्त पुरन्दर

होता॑ यक्षदि॒डाभि॒रिन्द्र॑मी॒डि॒तमा॒जुह्वा॑न॒ममर्त्यम्।
दे॒वो दे॒वैः सवी॒र्यो॑ वज्र॑हस्तः पुरन्द॒रो वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥३॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है, **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली **इडाभिः ईडितम्**=वेदवाणियों से स्तुति किये गये प्रभु को, **अजुह्वानम्**=जो सभी से पुकारा जाता है। सज्जन तो प्रातः-सायं शक्ति व शान्ति की प्राप्ति के लिए प्रभु का आराधन करते ही हैं, दुर्जन भी कष्ट आने पर प्रभु को ही पुकारते हैं। **अमर्त्यम्**=वे प्रभु अमरणधर्मा हैं। २. **देवः**=वे प्रभु देव हैं। **देवैः**=सब देवों के साथ उनका निवास है, और सब देव उस प्रभु के कारण ही देवत्व को प्राप्त हुए हैं। प्रभु के सम्पर्क में आनेवाला यह होता भी 'देवः'=देव बनता है, **देवैः**=दिव्य गुणों से अपने जीवन को अलंकृत करता है। **सवीर्यः**=यह पराक्रमशाली बनता है, **वज्रहस्तः**=क्रियाशील हाथोंवाला होता है और **पुरन्दरः**=इन शरीररूप पुरियों का विदारण करता है, अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठकर मुक्त हो जाता है। ३. इसी उद्देश्य से जीव को चाहिए कि वह **आज्यस्य वेतु**=शक्ति का पान करनेवाला बने, सोम, अर्थात् वीर्य को शरीर में ही सुरक्षित रक्खे। इस प्रकार सोम का पान करनेवाले **होतः**=सदा दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=दान देनेवाला बन और

उस प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ—प्रभु वेदवाणियों से स्तुत होते हैं। उन प्रभु से मेल बनाकर जीव भी देव बनता है। जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठता है, अतः जीव को चाहिए कि शक्ति की रक्षा करे और दानशील बनकर प्रभु को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो।

ऋषिः—**बृहदुक्थो वामदेवः**। देवता—**रुद्रः**। छन्दः—**त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

'वसु, रुद्र व आदित्य' बनना

होता॑ यक्षद् ब॒र्हिषीन्द्रं॑ निषद्व॒रं वृ॑ष॒भं नर्या॑पसम्।
वसु॑भी रु॒द्रैरा॑दि॒त्यैः स॒युग्भि॑र्ब॒र्हिरास॑द॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥४॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदयाकाश में **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है। जो प्रभु **निषद्वरम्**=(निषदः उपवेष्टाः तेषां वरम्) हृदय में आसीन होनेवालों में सबसे श्रेष्ठ हैं, **वृषभम्**=सब सुखों की वर्षा करनेवाले व शक्तिशाली हैं और **नर्यापसम्**=नरहितकारी कर्मोंवाले हैं, उनका कोई भी कार्य मनुष्य का अहित करनेवाला नहीं। २. ये प्रभु जो **वसुभिः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले **रुद्रैः**=(रोरुयमाणो द्रवति) अपने हृदयों में प्रभु-नामोच्चारण करते हुए कार्यों में लगे रहनेवाले **आदित्यैः**=सब ज्ञान-विज्ञान का आदान करके सूर्य की भाँति चमकनेवाले **सयुग्भिः**=मिलकर कार्य करनेवाले (सह युञ्जन्ति) पुरुषों से **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय में **आसदत्**=(आसाद्यते) आसीन किये जाते हैं। प्रभु का निवास वसु, रुद्र व आदित्य जोकि परस्पर मेलवाले होते हैं उन्हीं के हृदयों में होता है, अतः हम भी इन्हीं में से एक बनने का प्रयत्न करें। प्रभु इनके साथ ही वासनाशून्य हृदय में बैठते हैं, (आसदत्) अतः मैं शरीर को नीरोग बनकार 'वसु' बनूँगा, सदा प्रभुस्मरणपूर्वक क्रिया में लगकर वासनाशून्य बनता हुआ 'रुद्र' बनूँगा और अपने हृदय को पवित्र बनाऊँगा, ज्ञान-विज्ञान का आदान करके मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल करनेवाला 'आदित्य' बनूँगा। ३. उपासक को चाहिए कि वह **'आज्यस्य'**=तेज का **वेतु**=अपने अन्दर पान करे। शक्ति को अपने में सुरक्षित रक्खे और इस प्रकार सब उत्तमताओं की अपने में नींव डाले। हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=उस प्रभु के साथ अपना मेल बना। इसी उद्देश्य से दानी बन।

भावार्थ—प्रभु 'नर्यापस्' हैं, उनके सब कार्य जीव के लिए हितकर हैं। हम भी वसु, रुद्र व आदित्य बनकर प्रभु से मिलकर कार्य करनेवाले हों (सयुज्)। अपने में शक्ति का व्यापन करते हुए होता बनें और खूब दान देनेवाले हों।

ऋषिः—**बृहदुक्थो वामदेवः**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृदतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

ओजस्, वीर्य व सहस्

होता॑ यक्ष॒दोजो॒ न वी॒र्यं॒॑ सहो॒ द्वार॒ऽइन्द्र॑मवर्द्धयन्। सु॒प्रा॒य॒णाऽअ॒स्मिन् य॒ज्ञे वि श्र॑यन्तामृता॒वृधो॒ द्वार॒ऽइन्द्रा॑य मी॒ढुषे॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥५॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला अथवा प्रभु का आह्वान करनेवाला (आह्वाता) **ओजः**=ओज को **न**=और **वीर्यम्**=वीर्य को, **सहः**=सहनशक्ति को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करे, अर्थात् प्रभुस्मरण करते हुए तथा त्याग की वृत्ति को अपने में पनपाते हुए हम 'ओज, वीर्य व सहस्' को अपने में धारण करें। ३. ऐसा करने पर **द्वारः**=हमारे सभी इन्द्रियद्वार **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **अवर्धयन्**=बढ़ानेवाले होते हैं, अर्थात् सब इन्द्रियद्वारों

से प्रभु-पूजन चलता है और ये विषय-प्रवणता से दूर हो जाते हैं। ३. ये इन्द्रियद्वार **सुप्रायणाः**=प्रकृष्ट गमनवाले होकर **अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवनयज्ञ में **विश्रयन्ताम्**=विशिष्टिरूप से (श्रि=सेवायाम्) सेवा करनेवाले हों। ४. **ऋतावृधः**=ये सदा ऋत का वर्धन करनेवाले **द्वारः**=नव इन्द्रियद्वार **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली **मीढुषे**=सुखों का सेचन करनेवाले प्रभु की प्राप्ति के लिए **आज्यस्य व्यन्तु**=शक्ति का पान करें, शक्ति को शरीर में सुरक्षित रक्खें। ५. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले जीव! तू **यज**=उस प्रभु को अपने साथ संगत कर, खूब देनेवाला बन।

भावार्थ—हम अपने में ओजस्विता को धारण करें। हमारे इन्द्रियद्वार उस प्रभु का वर्धन करनेवाले हों। इनसे सत्य का ही पोषण हो और शक्ति का रक्षण करते हुए हम प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**बृहदुक्थो वामदेवः**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

उषासानक्ता—दोनों सन्ध्याकाल

होता॑ यक्षदु॒षेऽइन्द्र॑स्य धे॒नू सु॒दुघे॑ मा॒तरा॑ म॒ही।
स॒वा॒तरौ॒ न तेज॑सा व॒त्समि॒न्द्रम॑वर्द्धतां वी॒तामा॑ज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥६॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला अथवा प्रभु का आह्वाता पुरुष **उषे**=(नक्तोषासा) दोनों सन्ध्याकालों को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है। ये दोनों उषःकाल **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **धेनू**=आप्यायन करनेवाले हैं (धेट् अप्यायने) ये सब दोषों का दहन करके उसका वर्धन करते हैं (उष दाहे)। **सुदुघे**=इस प्रकार ये उत्तमता से उसका प्रपूरण करनेवाले हैं। **मातरा**=उसका निर्माण करनेवाले हैं। उसके जीवन को सुन्दर बनाते हैं। **मही**=ये उसके जीवन को महिमा-सम्पन्न करते हैं। २. ये उषःकाल इसके लिए **तेजसा**=तेजस्विता के द्वारा **सवातरौ न**=(स=समान, वात=वायु, र=गति) वायु के समान गतिवाले हैं, इसे वायु की भाँति क्रियाशील बनाते हैं। ३. इस प्रकार क्रियाशीलता के द्वारा **वत्सम्**=प्रभु के प्रिय अथवा वेदवाणियों का उच्चारण करनेवाले **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय—असुरों का संहार करनेवाले पुरुष को **अवर्धताम्**=ये उषःकाल बढ़ाते हैं। ३. ये इसके लिए **आज्यस्य**=शक्ति का **वीताम्**=पान करनेवाले बनें और हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! **यज**=तू अपने साथ प्रभु का मेल कर, अथवा इन उषःकालों को अपने साथ संगत कर।

भावार्थ—दोनों उषःकाल जीव का वर्धन, पूरण व निर्माण करनेवाले हों। ये इसे वायु के समान क्रियाशील बनाएँ। इसके लिए शक्ति का पान करनेवाले हों।

ऋषिः—**बृहदुक्थो गोतमः**। देवता—**अश्विनौ**। छन्दः—**जगती**। स्वरः—**निषादः**।

प्राणापान (दैव्या होतारा)

होता॑ यक्षद्दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजा॒ सखा॑या ह॒विषेन्द्रं॑ भिषज्यतः।
क॒वी दे॒वौ प्रचे॑तसाविन्द्रा॑य धत्तऽइन्द्रि॒यं वी॒तामा॑ज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥७॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **दैव्या होतारा**=प्राणापानों को (ऐ० २।४) **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है। ये प्राणापान इसके **भिषजा**=वैद्य होते हैं, इसके रोगों को दूर करके **सखाया**=इसके मित्र बनते हैं अथवा ये प्राणापान परस्पर स्नेहवाले होते हैं। दोनों एक-दूसरे से सम्बद्ध होकर कार्य करते हैं। २. ये प्राणापान **हविषा**=अग्निहोत्र के साथ— अग्निहोत्र में आहुत किये गये हव्य पदार्थों को श्वास द्वारा सूक्ष्मरूप में अपने अन्दर

लेने के द्वारा **इन्द्रम्**=जीव को **भिषज्यतः**=नीरोग करते हैं। ३. **कवी**=ये नीरोगता के द्वारा जीव को क्रान्तदर्शी बनाते हैं **देवौ**=दिव्य गुणोंवाला करते हैं, **प्रचेतसौ**=प्रकृष्ट ज्ञानवाला बनाते हैं। **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए ये प्राणापान **इन्द्रियम्**=वीर्य को **धत्त**=धारण करते हैं। इस प्रकार ये प्राणापान इस जीवात्मा के लिए **आज्यस्य**=रेतस् का **वीताम्**=पान करें, इसकी शक्ति को शरीर में ही सुरक्षित करनेवाले हों। ४. **होता**=हे दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=इन प्राणापानों को अपने साथ संगत कर अथवा दान देनेवाला बन और प्रभु को अपने साथ संगत कर।

भावार्थ—प्राणापान साधक को नीरोग करते हैं। ये उसे क्रान्तदर्शी, दिव्य गुणोंवाला और ज्ञानी बनाते हैं। प्राणापान हमारे रेतस् की ऊर्ध्वगति का साधन हों।

ऋषिः—**बृहदुक्थो वामदेवः**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृज्जगती**। स्वरः—**निषादः**।

हविष्मती इन्द्र पत्नियाँ

होता॑ यक्षत्तिस्रो दे॒वीर्न भे॑ष॒जं त्रय॑स्त्रिधात॑वो॒ऽपस॒ऽइडा॒ सर॑स्वती॒ भार॑ती म॒हीः। इन्द्र॑पत्नीर्ह॒विष्म॑तीर्व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥८॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **तिस्रः देवीः**=तीन देवियों को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है, जो देवियाँ **भेषजम्**=औषध हैं। **त्रयः**=(तिस्र) ये तीनों **त्रिधातवः**=शरीर, मन व बुद्धि को धारण करनेवाली हैं। **अपसः**=कर्मशील हैं, अर्थात् ये हमारे जीवन को क्रियाशील बनानेवाली हैं। २. ये देवियाँ क्रमशः **इडा-सरस्वती-भारती**=श्रद्धा, वाणी व मस्तिष्क में रहनेवाली विद्या की अधिदेवता तथा 'भारती' शरीर का सम्यक् भरण करनेवाली पोषण की देवता हैं। इनका क्रमशः मन, मस्तिष्क व शरीर में निवास है। ये सब **महीः**=महनीय हैं, हमारे जीवन को भी ये महनीय बनाती हैं। ३. **इन्द्रपत्नीः**=ये इन्द्र की पत्नियाँ, जीवात्मा की शक्तियाँ हैं। **हविष्मतीः**=हविवाली हैं। इनके कारण मनुष्य में देकर खाने की वृत्ति पैदा होती है। ४. ये तीनों देवियाँ **आज्यस्य व्यन्तु**=शरीर में शक्ति का पान करनेवाली हों। **होतः**=देकर खानेवाले जीव! तू **यज**=इन देवियों को अपने साथ संगत कर।

भावार्थ—मन में श्रद्धा, मस्तिष्क में सरस्वती और शरीर में भारती—ये तीनों देवियाँ हमारे शरीर, मन व मस्तिष्क का धारण करनेवाली हों। ये शरीर में शक्ति का पान करनेवाली हों।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृदतिजगती**। स्वरः—**निषादः**॥

त्वष्टा

होता॑ यक्षत्त्वष्टा॑र॒मिन्द्रं॑ दे॒वं भि॒षज॑ꣳसु॒यज॑ं घृत॒श्रिय॑म्।
पु॒रु॒रू॒पꣳ सुरे॑तसं म॒घोन॒मिन्द्रा॑य॒ त्वष्टा॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥९॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **त्वष्टारम्**=देवशिल्पी, दिव्यगुणों का निर्माण करनेवाले ज्ञान की दीप्तिवाले (तक्षतेः करोति कर्मणः) उत्तम कर्मों को करनेवाले प्रभु को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है, जोकि **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं। **देवम्**=दिव्य गुणों का पुञ्ज हैं। **भिषजम्**=हमारे सब रोगों के चिकित्सक हैं, प्रभु के नाम-स्मरण से रोगों का प्रतीकार होता है, इस नाम-स्मरण से रोग आते ही नहीं। **सुयजम्**=सुगमता से उपास्य व संगतिकरण योग्य हैं। **घृतश्रियम्**=दीप्तश्रीवाले हैं, **पुरुरूपम्**=विश्वरूप हैं, वेद में 'विश्वतश्चक्षुः' आदि शब्दों में इस पुरुरूपता का वर्णन द्रष्टव्य है। **सुरेतसम्**=उत्तम रेतस्वाले हैं तथा उनके

स्मरण से हमारा रेतस् पवित्र बना रहता है। **मघोनम्**=मघवान् हैं, सम्पूर्ण धनोंवाले हैं अथवा जो सम्पूर्ण यज्ञोंवाले हैं (मघ=मख)। २. **त्वष्टा**=यह दीप्त प्रभु **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **इन्द्रियाणि**=इन्द्रियशक्तियों को **दधत्**=धारण करते हैं। होता बनकर जीव त्वष्टा को अपने साथ संगत करता है तो त्वष्टा उसे शक्तियाँ प्राप्त कराते हैं। वस्तुतः यह त्वष्टा इस उपासक के हित के लिए **आज्यस्य वेतु**=शक्ति का पान करे, अर्थात् इस प्रभु-नाम-स्मरण से वासनाओं का विनाश होकर शक्ति का हममें सुरक्षण हो। हे **होतः**=प्रभु का आह्वान करनेवाले उपासक **यज**=तू यज्ञशील बन और प्रभु को अपने साथ संगत कर।

भावार्थ—वे प्रभु त्वष्टा हैं, हममें दिव्य गुणों का निर्माण करनेवाले हैं, ज्ञान से दीप्त हैं और सृष्टिनिर्माण आदि यज्ञात्मक कर्मों को करनेवाले हैं। उनके संग से सुरेतस् बनकर हम भी दिव्य गुण-सम्पन्न, ज्ञानदीप्त व यज्ञशील बनें।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**बृहस्पतिः**। छन्दः—**स्वराडतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

वनस्पति

होता॑ यक्षद्वन॒स्पति॑ꣳशमि॒तार॑ꣳशतक्र॒तुं धि॒यो जो॒ष्टार॑मिन्द्रि॒यम्। मध्वा॑ सम॒ञ्जन् प॒थिभि॑: सु॒गेभि॒: स्वदा॑ति य॒ज्ञं मधु॑ना घृ॒तेन॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥१०॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **वनस्पतिम्**=ज्ञान-किरणों के रक्षक को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है, **शमितारम्**=जो शम-प्रधान हैं, अपने उपासक को भी शान्ति प्राप्त करानेवाले हैं। **शतक्रतुम्**=अनन्त प्रज्ञानों व कर्मोंवाले हैं। **धियः जोष्टारम्**=बुद्धि व कर्म को प्रेरित करनेवाले हैं (सवितारम्—उ०)। **इन्द्रियम्**=जो वीर्यात्मक हैं 'वीर्यमसि'। २. ये प्रभु उपासक के **यज्ञम्**=जीवनयज्ञ को **सुगेभिः पथिभिः**=शोभनगमनवाले मार्गों से **मध्वा**=माधुर्य से **समञ्जन्**=अलंकृत करते हुए **मधुना घृतेन**=माधुर्य व दीप्ति से **स्वदाति**=स्वादवाला कर देते हैं, रसमय बना देते हैं। प्रभु-उपासक सदा सरल, कुटिलताशून्य, माधुर्ययुक्त और ज्ञान की दीप्तिवाला होता है। ३. ये वनस्पति—ज्ञानरश्मियों का पति प्रभु इस जीव के हित के लिए **आज्यस्य वेतु**=शक्ति का पान कराएँ। प्रभु नाम-स्मरण से हमारी शक्ति की ऊर्ध्वगति हो। हे **होतः**=प्रभु का आह्वान करनेवाले उपासक! **यज**=तू उस प्रभु के साथ अपना मेल बना।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान की किरणों के पति हैं, हमारे जीवनों को शान्त बनानेवाले हैं। जीवन में माधुर्य, दीप्ति व सरलता का सञ्चार करनेवाले हैं। उस प्रभु के स्मरण से हम शक्ति को अपने में सुरक्षित करें और जीवन को मधुर बनाएँ।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृच्छक्वरी**। स्वरः—**धैवतः**।

आज्य-मेदस्

होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑ꣳस्वाहाज्य॑स्य॒ स्वाहा॒ मेद॑स॒: स्वाहा॑ स्तो॒काना॒ꣳस्वाहा॒ स्वाहा॑कृतीना॒ꣳस्वाहा॑ ह॒व्यसू॑क्तीनाम्। स्वाहा॑ दे॒वाऽआ॑ज्य॒पा जु॒षा॒णाऽइन्द्र॒ऽआज्य॑स्य॒ व्यन्तु॒ होत॒र्यज॑॥११॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करे। २. इस प्रभु से मेल करनेवाले के जीवन में **स्वाहा**=(स्व=हा) स्वार्थ त्याग करनेवाले **देवाः**=देव, अर्थात् प्राणादि पाँच मरुत् जो **आज्यपाः**=शरीर में शक्ति का पान करनेवाले हैं। **जुषाणाः**=ये आत्मा का प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले हैं, इनके साथ **इन्द्रः**=

स्वयं जीवात्मा **आज्यस्य**=शक्ति का **व्यन्तु**=पान करे, इसलिए हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=प्रभु से मेल कर। ३. ये सब देव **आज्यस्य**=घृत का **स्वाहा**=स्वार्थत्याग की भावना के साथ **व्यन्तु**=पान करें। **मेदसः स्वाहा**=औषध के गुणोंवाले (medicinal properties) या शरीर को कुछ स्थूल करनेवाले पदार्थों को **स्वाहा**=स्वार्थत्याग के साथ **व्यन्तु**=पान करें, अर्थात् सारे घृत व मेदस् को स्वयं ही न खालें, अपितु त्याग करके बचे हुए को खानेवाले बनें। ४. **स्तोकानाम्**=सोम के कणों का **स्वाहा**=स्व में—अपने में आहुति देते हुए पान करें। इन वीर्यकणों को नष्ट न होने दें। **स्वाहाकृतीनाम्**=(प्राणा यै स्वाहाकृतयः। —कौ० १०।५) प्राणों का **स्वाहा**=स्व में आहुति देते हुए **व्यन्तु**=पान करें अथवा अपने में प्राणाशक्ति का विकास करें (वी=प्रजनन)। **हव्यसूक्तीनाम्**=प्रभु को पुकारने के लिए मधुर वचनों का **स्वाहा**=अपने में आहुति देते हुए पान करें, अर्थात् वीर्यकणों को, प्राणशक्ति को तथा प्रभु को पुकारने के पवित्र पदों को अपने में धारण करें।

भावार्थ—होता प्रभु के साथ अपना मेल करें। घृत आदि पदार्थों का त्यागभावना से उपभोग करें। अपने में वीर्यकणों को, प्राणाशक्ति को तथा मधुर प्रार्थना व शक्तियों को आहुत करे, अर्थात् इनको धारण करें।

सूचना—ये ११ मन्त्र 'प्रयाजप्रैष' कहाते हैं, अर्थात् वे प्रैष=प्रकृष्ट प्रेरणा के मन्त्र जो प्रयाज=जीव व प्रभु के महान् संगतिकरण का उल्लेख करते हैं। अब ११ अनुयाजप्रैषों का उल्लेख है। इनमें 'वसुवने' धन के सेवन का उल्लेख है और साथ ही यह भी कहा है कि वसुधेय=वसुओं के आधारभूत उस प्रभु के साथ यज=मेल बनाना आवश्यक है।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृदतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

देवं बर्हिः=दिव्य हृदय

देवं बर्हिरिन्द्रꣳसुदेवं देवैर्वीरवत् स्तीर्णं वेद्यामवर्द्धयत्।
वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतꣳराया बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥१२॥

१. **देवम्**=दिव्य गुणयुक्त **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **सुदेवम्**=जो दिव्य गुणोंवाला बना है, **अवर्धयत्**=बढ़ाता है, अर्थात् दिव्य, वासनाशून्य हृदय जितेन्द्रिय पुरुष की वृद्धि का कारण बनता है। २. कैसा हृदय? (क) **वस्तोः**=दिन में **वेद्याम्**=यज्ञवेदि में **वृतम्**=जिसका वरण किया गया है, अर्थात् सम्पूर्ण दिन जो यज्ञात्मक कर्मों की भावना से ही युक्त रहा है। (ख) **अक्तोः**=रात्रि में जो **प्रभृतम्**=प्रकृष्ट रूप से धारण किया गया है, अर्थात् रात्रि के समय सुषुप्ति में पहुँचकर जो आनन्द की स्थिति में स्थापित हुआ है और जो **राया**=दान दिये जानेवाले धन के द्वारा **बर्हिष्मतः**=अन्य वासनाशून्य हृदयवालों को **अत्यगात्**=लाँघ गया है, अर्थात् वासनाशून्य हृदयवालों में भी जो अधिक वासनाशून्य बना है। ३. ऐसा यह दिव्य, क्रीडक की भावना sportsman like spirit वाला हृदय **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का भी **वेतु**=(वी=प्रजनन) अपने में विकास करें, प्रभु का भी स्मरण करें। यह संसार धन के बिना तो चलता ही नहीं, अतः यह धन का सेवन बेशक करे, परन्तु धन के आधारभूत प्रभु को भूल न जाए। ४. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू इस प्रकार धन के साथ उस प्रभु को भी याद करता हुआ अपने जीवन को यज्ञशील बना, प्रभु से तेरा संगतिकरण हो (यज=संगतिकरण)। ५. इन 'अनुयाजप्रैष' मन्त्रों के ऋषि 'अश्विनौ' हैं, पति-पत्नी। स्पष्ट है कि गृहस्थ में धनार्जन करते हुए इन्होंने प्रभु को भूलना नहीं और प्रभु-स्मरण के साथ (अश् व्याप्तौ) उत्तम कर्मों

में लगे रहना है।

भावार्थ—हम अपने हृदयों को दिव्य बनाएँ। यह हृदय धनार्जन का ध्यान करता हुआ प्रभु का भी स्मरण करे।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिक्शक्वरी**। स्वरः—**पञ्चमः**।

देवीः द्वारः=दिव्य इन्द्रियद्वार

देवीर्द्वारऽइन्द्रꣳसङ्गते वीड्वीर्यामन्नवर्द्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वीणꣳरेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥१३॥

१. **देवीः**=दिव्य गुणोंवाले, जीवन-यात्रा में सारे व्यवहारों के साधक (दिव् व्यवहार), **द्वारः**=इन्द्रियद्वार, जो अलग-अलग भी बड़े प्रबल हैं, परन्तु **संघाते**=एक समूह के रूप में हो जाने पर तो **वीड्वीः**=अत्यन्त प्रबल हैं, हमें कुचल डालनेवाले हैं। ये इन्द्रियद्वार **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **यामन्**= जीवन-यात्रा में **अवर्धयन्**=बढ़ानेवाले होते हैं। 'अजितेन्द्रिय पुरुष' इन इन्द्रियों से कुचला जाता है तो जितेन्द्रिय को ये इन्द्रियाँ सिद्धि प्राप्त करानेवाली होती हैं। २. ये इन्द्रियाँ **वत्सेन**=(वदति इति) प्रभु के नाम का उच्चारण करनेवाले, **तरुणेन**=वासनाओं व विघ्नों को तैर जानेवाले, **कुमारेण**=(कु-मार) सब कुत्सित वृत्तियों को नष्ट कर डालनेवाले अथवा (कुमार क्रीडायाम्)=एक क्रीडक की मनोवृत्तिवाले **मीवता**=शत्रुओं की हिंसा करनेवाले (मी=हिंसायाम्) इस इन्द्र के साथ ये इन्द्रियाँ **अर्वाणम्**=(अर्व् to kill) नष्ट कर डालनेवाले अथवा 'अर्यते यत्र' जिसकी ओर अज्ञानवश जाया जाता है, उस **रेणुककाटम्**=धूलि से आच्छादित विषयकूप को **अपनुदन्ताम्**=अपने से दूर कर दें, अर्थात् संसार के ये विषय उस कुएँ के समान हैं जोकि ऊपर धूलि से आच्छन्न होने के कारण सामान्य भूमि के रूप में दिखता है और आकर्षक होने के कारण इन्द्रियों की उधर आने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है और उधर जाने पर हम इस कुएँ में गिरते हैं और समाप्त हो जाते हैं। चाहिए यह कि हम इस कुएँ से बचें—हमारे इन्द्रियद्वार इस ओर न जाएँ। यह होगा तभी जबकि इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव सदा प्रभु-नाम का उच्चारण करे (वत्स), वासनाओं को तैरने के लिए यत्नशील हो (तरुण), संसार में एक क्रीडक की मनोवृत्ति को अपने में विकसित करे (कुमार) तथा सदा बुराइयों के संहार में लगा रहे (मीवता) ३. विषयवासनारूप कूप को दूर से ही छोड़नेवाले ये इन्द्रियद्वार **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का **व्यन्तु**=विकास करें, अर्थात् प्रभु का खूब ही स्मरण करें। ४. इस प्रकार हे इन्द्र=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **यज**=यज्ञशील बन, उस प्रभु से मेल करनेवाला बन, इसीलिए तू धन का दान कर। दान ही यज्ञ का उत्कृष्ट रूप है।

भावार्थ—इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं, विषय-वासनाओं के तृणाच्छन्न कूप के समान हैं। हम प्रभु-नामस्मरण करते हुए इन्द्रियों को इस कूएँ में गिरने से बचाएँ। धन कमाएँ, परन्तु प्रभु को न भूलें और धन का दान करनेवाले हों।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**अहोरात्रे**। छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**। स्वरः—**पञ्चमः**।

देवी उषासानक्ता

देवीऽउषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्।
दैवीर्विशः प्रायासिष्टाꣳसुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥१४॥

१. **उषासानक्ता**=उषःकाल व रात्रि दोनों **देवी**=हमारे लिए दिव्य गुणों को लिये हुए हों और ये **प्रयति यज्ञे**=इस चल रहे जीवन-यज्ञ में, अर्थात् वर्त्तमान जीवनयात्रा में **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **अह्वेताम्**=पुकारें, अर्थात् हम प्रातः-सायं उस प्रभु का स्मरण करें, वस्तुतः तभी यह जीवनयात्रा सुचारुरूपेण चलती है। २. इस जीवनयात्रा में **दैवीर्विशः**=दिव्य गुणोंवाली, प्रभु की ओर चलनेवाली अथवा ज्ञान से दीप्त दानशील प्रजाओं की ओर ही **प्रायासिष्टाम्**=प्रकर्षेण जानेवाले हों, अर्थात् हम सदा उत्तम संगवाले हों, जैसा हमारा संग होगा वैसे ही तो हम बनेंगे। ३. हमारे ये दिन-रात **सुप्रीते**=अत्यन्त सन्तोष से युक्त हुए-हुए (अतितुष्टे) **सुधिते**=(सुतारां हिते) अत्यन्त हितकारी बने हुए **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का **वीताम्**=विकास व प्रादुर्भाव करें, अर्थात् हम दिन-रात सन्तोष की वृत्तिवाले बनकर हितकर कार्यों में लगे हुए धनार्जन करें, परन्तु उस धनों के स्वामी को भूल न जाएँ। ४. हे जीव! तू **यज**=उस प्रभु से मेल करनेवाला बन।

भावार्थ—हम दिन-रात इस जीवनयात्रा को चलाते हुए उस प्रभु का स्मरण करें। उत्तम वृत्तिवाले लोगों से ही अपना मेल बनाएँ, सन्तुष्ट बनकर हितकारी कार्यों में लगे हुए धनार्जन करें, परन्तु प्रभु को भूलें नहीं। यज्ञशील हों।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिगतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

देवी जोष्ट्री (अहोरात्रे)

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। अयाव्यन्याघा द्वेषाꣳस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१५॥

१. यहाँ 'जोष्ट्री' शब्द अहोरात्र के लिए आया है। ये अहोरात्र परस्पर एक-दूसरे का प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले हैं, एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं, दोनों के लिए 'दिन व रात' अलग-अलग शब्दों का प्रयोग भी होता है—'रात्रिन्दिवं, नक्तन्दिवं, अहोरात्र' आदि शब्दों में द्वन्द्वात्मक प्रयोग तो इनका है ही। ये दोनों **देवी**=दिव्य गुणोंवाले हैं, इस दिव्यता का उल्लेख प्रस्तुत मन्त्र में ही आगे है। ये **वसुधिती**=सब निवासक तत्त्वों का धारण करनेवाले हैं। ये **देवम्**=देव वृत्तिवाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धताम्**=बढ़ाते हैं, उसकी उन्नति का कारण बनते हैं। आसुर वृत्तिवाले तो इन दिन-रोतों में भोगमय जीवन बिताते हुए अपना ह्रास कर बैठते हैं। २. इनमें से **अन्या**=एक 'रात्रि' **अघा**=पापों को व **द्वेषांसि**=द्वेषों को **अयावि**=हमसे पृथक् करती है। रात्रि में सो जाने पर पाप व द्वेष विस्मृत हो जाते हैं। महानिद्रा व मृत्यु की व्यवस्था भी इन राग-द्वेषों को भुलाने के लिए ही हुई है। हम महानिद्रा में जाकर इन द्वेषों व पापवृत्तियों को बिल्कुल भूल जाते हैं। ३. **अन्या**=दूसरा यह 'दिन' **वार्याणि वसु**=(वसूनि) वरणीय धनों को **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए, उत्तम कर्मों में लगे हुए पुरुष के लिए **आवक्षत्**=प्राप्त कराता है। दिन में हम सुपथ से, उत्तम मार्ग से धन कमानेवाले होते हैं। ४. इस प्रकार **शिक्षिते**=द्वेष व पाप के अपनयन (दूर करने में) में तथा वरणीय वसुओं के प्रापण में सधे हुए (trained) ये दिन-रात **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत परमात्मा को **वीताम्**=प्रकाशित करें, आविर्भूत करें, अर्थात् हम प्रभु को भूलें नहीं। ५. हे जीव! तू **यज**=इस प्रकार प्रभु से अपना मेल बना, यज्ञशील बन, दान दे।

भावार्थ—रात्रि हमें सब द्वेषों व पापों को भुला देती है। दिन हमें वरणीय धनों के प्रापण में सहायक होता है। ये हमें धन प्राप्त कराते हुए प्रभु का भी स्मरण कराएँ।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिगाकृतिः**। स्वरः—**निषादः**।

देवी ऊर्जाहुती (द्यावापृथिव्यौ)

देवीऽऊर्जाहुंति दुघे सुदुघे पयसेन्द्रंमवर्द्धताम्। इषमूर्जंमन्या वक्षत्सग्धिंःसपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयंमाने पुराणेन नवमधातामूर्जंमूर्जाहुंतीऽऊर्जयंमाने वसु वार्यांणि यजंमानाय शिक्षिते वंसुवनें वसुधेयंस्य वीतां यज ॥१६॥

१. यहाँ 'ऊर्जाहुती' शब्द द्युलोक व पृथिवीलोक के लिए आया है (नि० ९।४२)। ये हममें 'ऊर्ज्' की आहुति देनेवाले हैं। इन्हीं से अन्न व रस के द्वारा बल व प्राणशक्ति प्राप्त करायी जाती है, अतएव ये **देवी** =दिव्य गुणोंवाले अथवा बल व प्राणशक्ति को देनेवाले हैं। वे **दुघे**=अन्न व रस के द्वारा हमारा पूरण करनेवाले हैं (दुह प्रपूरणे), **सुदुघे**=बड़ी उत्तमता से ये हमारा पूरण करनेवाले हैं। ये दोनों **पयसा**=आप्यायन व वर्धन के कारणभूत रस से **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धताम्**=बढ़ाते हैं। २. इनमें से **अन्या**=दूसरा पितृस्थानापन्न द्युलोक **सग्धिम्**=सहभोजन को तथा **सपीतिम्**=सहपान को प्राप्त कराता है। पृथिवी से उत्पन्न हुए-हुए अन्न को उस-उस भूमि के स्वामी अपना समझते हैं और स्वयं खाते हैं, परन्तु द्युलोक से होनेवाली वृष्टि पर व्यक्ति का अधिकार नहीं, इसमें बहनेवाली हवा को सभी श्वासवायु के साथ अपने अन्दर ग्रहण करते हैं। इस प्रकार द्युलोक सपीति व सग्धि को प्राप्त कराता है। ३. ये द्यावापृथिवी **नवेन**=नव अन्न से **पूर्वं ऊर्जम्**=पुराने अन्न की **दयमाने**=रक्षा करते हैं और **पुराणेन**=पुराने से **नवं ऊर्जम्**=नये अन्न को **अधाताम्**=धारण करते हैं। कई बार चावल इत्यादि कुछ देर तक रखने आवश्यक हो जाते हैं, उसे पुराने अन्न में कुछ औषधगुणों की अधिकता हो जाती है, परन्तु नये चावल न आएँ तो पुराने को समाप्त करना पड़ जाता है, परन्तु द्युलोक व पृथिवीलोक नये धान्य को पैदा करके पुराने का रक्षण कर देते हैं और यह तो स्पष्ट ही है कि पुराने को बोकर हम नये धान को प्राप्त करते हैं। ४. इस प्रकार **ऊर्जयमाने**=ऊर्जा को बढ़ाते हुए **ऊर्जाहुती**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **वार्याणि वसु**=वरणीय धनों को (अधाताम्) धारण करते हैं। ५. इस प्रकार **शिक्षिते**=नव से पुराने की रक्षा व पुराने से नव का धारण तथा यजमान के लिए वरणीय वसुओं के प्रापण की शिक्षा को पाये हुए ये द्यावापृथिवी **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=सब धनों के आधारभूत उस प्रभु का **वीताम्**=अपने में प्रजनन व प्रादुर्भाव करें। हे जीव! तू **यज**=उस प्रभु को अपने साथ संगत करनेवाला बन। धन को प्राप्त कर तथा उस धन का दान देनेवाला बन।

भावार्थ—द्युलोक व पृथिवीलोक हमारे लिए उत्तम अन्नों का दोहन करनेवाले हों। ये यज्ञशील को वार्य वसु प्राप्त कराएँ। इनसे धनों को प्राप्त करते हुए हम धनों के आधारभूत प्रभु को न भूल जाएँ।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**अश्विनौ**। छन्दः—**भुरिग्जगती**। स्वरः—**निषादः**।

दैव्या होतारौ

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रंमवर्द्धताम्। हुताघंशःसावाभार्ष्टां वसु वार्यांणि यजंमानाय शिक्षितौ वंसुवनें वसुधेयंस्य वीतां यज॥१७॥

१. ऐ० २।४ के अनुसार प्राणापान 'दैव्य होता' हैं। ये **देवाः**=दिव्य गुणयुक्त व शरीर के सारे व्यवहारों के साधक हैं। ये दोनों **दैव्या होतारा**=प्राणापान **देवम्**=दिव्य गुणोंवाले,

काम-क्रोधादि की विजिगीषावाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धताम्**=बढ़ाते हैं। सब प्रकार की उन्नति का निर्भर इन्हीं पर है। इनकी साधना से ही मन की वृत्ति को भी हमने वश में करना है। वशीभूत मन हमारे मोक्ष तक का साधक बनता है, अतः प्राणापान सचमुच हमारा उत्तम वर्धन करते हैं। २. **हता अघशंसौ**=अघ व पाप के शंसन (प्रशंसन) को जिन्होंने नष्ट किया है। प्राणासाधना होने पर पाप पाप के रूप में दिखते हैं। उनका चमकीला रूप हमें लुब्ध नहीं कर पाता। ऐसे ये प्राणापान **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **वार्याणि वसु**=(वसूनि) वरणीय धनों को **आभार्ष्टाम्**=प्राप्त कराएँ (आहृतवन्तौ)। ३. **शिक्षितौ**=इस प्रकार यज्ञशील के लिए उत्तम धन देने के लिए अभ्यस्त ये प्राणापान **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का **वीताम्**=अपने में विकास करें और हे जीव! तू **यज**=इन प्राणापान को अपने साथ संगत कर।

भावार्थ—प्राणापान की साधना हमारे दृष्टिकोण को शुद्ध करे। हम पाप को पाप के ही रूप में देखें।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**अतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

तीन देवताएँ

देवीस्तिस्त्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्। अस्पृक्षद्धारती दिवꣳरुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥१८॥

१. **तिस्रः देवीः**=भारती, सरस्वती व इडा नामक तीन देवियाँ, जो **तिस्रः**=तीनों की तीनों **देवीः**=द्युति—ज्ञानदीप्ति व दानवृत्ति को हमें प्राप्त करानेवाली हैं, ये देवियाँ **पतिम् इन्द्रम्**=काम-क्रोधादि को वश में करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धयन्**=बढ़ाती हैं। २. इस रक्षक जीव को **दिवम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **भारती**=(भरत आदित्यः, तस्य भा भारती) हमारा धारण करनेवाली ये सूर्य की किरणें **अस्पृक्षत्**=छूती हैं ३. **रुद्रैः**=(रोरुयमाणो द्रवति—नि०) उस प्रभु के नामोच्चारण के साथ क्रिया में लगे रहने के साथ **सरस्वती**=शिक्षा की अधिदेवता **यज्ञम्**=आत्मा के इन्द्रियों के साथ संगतिकरण करानेवाले मन को (हृदयान्तरिक्ष को) छूती है तथा ४. यह **वसुमती**=सब वसुओं को देनेवाली **इडा**=श्रद्धा **गृहान्**=हमारे इन शरीररूपी घरों को छूती है, अर्थात् इन तीन देवियों के अनुग्रह से हमारा मस्तिष्क, मन व गृहरूप शरीर सब सुन्दर बन जाते हैं। ५. ये तीनों देवियाँ **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=उस धन के आधारभूत प्रभु को **व्यन्तु**=विकसित करें, उसकी भावना को अपने में जागरित करें, अर्थात् प्रभु को भूलें नहीं। **यज**=हे जीव! तू इन देवियों को अपने साथ संगत कर अथवा प्रभु के साथ अपना मेल बना और उसके लिए दानशील बन।

भावार्थ—हम 'भारती, सरस्वती व इडा' इन देवियों के पति बनें। इनसे हमारे मस्तिष्क, मन व शरीररूप गृह सुभूषित हों।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**कृतिः**। स्वरः—**निषादः**।

त्रिवरूथ-त्रिबन्धुर

देवऽइन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। शतेन शितिपृष्ठाना-माहितः सहस्रेण प्र वर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिं स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥१९॥

१. **देवः**=दिव्य गुणों का पुञ्ज, **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली, **नराशंसः**=मनुष्यों से स्तुति करने योग्य, **त्रिवरूथः**=शरीर (इन्द्रियाँ), मन व बुद्धि को सुरक्षित करनेवाला (वरूथ=cover) अथवा भौतिक सम्पत्ति—शारीरिक बलरूप सम्पत्ति तथा मस्तिष्क के ज्ञानरूप धन को देनेवाला (वरूथ=wealth) **त्रिवन्धुरः**=पृथिवीलोक, द्युलोक व अन्तरिक्षलोक को परस्पर बाँधनेवाला वह प्रभु **देवम्**=दिव्य गुणों को अपनानेवाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धयत्**=बढ़ाता है। २. यह प्रभु **शितिपृष्ठानां शतेन**=(शितयः तीक्ष्णाः पृष्ठः=प्रच्छ जिज्ञासायाम्') तीव्र जिज्ञासाओं के सैकड़ों से **आहितः**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के हृदय में स्थापित होता है, अर्थात् जब हमें निरन्तर प्रभु की जिज्ञासा होती है तभी हमें हृदयों में उस प्रभु का आभास मिलता है। ३. **सहस्त्रेण प्रवर्त्तते**=वे प्रभु हज़ारों प्रकार से अपने कार्य को कर रहे हैं। ४. **मित्रावरुणा इत्**=मित्र और वरुण ही, अर्थात् सबके साथ स्नेह करनेवाला तथा द्वेष के निवारणवाले पुरुष ही **अस्य**=इस प्रभु के **होत्रम्**=होतृकार्य के **अर्हतः**=योग्य होते हैं। इन्हीं को इस प्रभु के आह्वान का अधिकार है। प्रभु की सच्ची प्रार्थना वही करता है जो सबके साथ स्नेह से रहता है और द्वेष नहीं करता। ५. **बृहस्पतिः**=ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान का पति ही **स्तोत्रम्**=इस प्रभु के स्तवन का अधिकारी है तथा **अश्विनौ**=प्राणापान **आध्वर्यवम्**=इस जीवनयज्ञ के कार्य-सञ्चालन के सम्यक्तया योग्य होते हैं। प्राणापान के ठीक होने पर ही जीवन सुचारुरूपेण चलता है। ६. **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु को **वेतु**=मनुष्य अपने में प्रादुर्भूत करने का प्रयत्न करे। **यज**=हे जीव! इस प्रकार तू उस प्रभु से अपना मेल कर, उसके लिए दान देनेवाला बन।

भावार्थ—हम 'त्रिवरूथ-त्रिबन्धुर' प्रभु का स्मरण करें। विज्ञान के अध्ययन में जिज्ञासाओं के द्वारा प्रभु-भावना का हममें उदय हो। धन का सञ्चय करते हुए वस्तुतः धनों के स्वामी उस प्रभु को हम न भूलें।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृदतिशक्वरी**। स्वरः—**पञ्चमः**।

मधुशाखः सुपिप्पलः (यह संसार-वृक्ष)

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्द्धयत्।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृꣳहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२०॥

१. **देवः**=सब व्यवहारों का साधक, **हिरण्यपर्णः**=हितरमणीय पालन व पूरण करनेवाला (सुनहले पत्तोंवाला), **मधुशाखः**=माधुर्यमयी शाखाओंवाला **सुपिप्पलः**=उत्तम फलवाला **वनस्पतिः**=सौन्दर्य, यश व धन (loveliness, glory, wealth) का रक्षक यह संसार-वृक्ष **देवैः**=अपने 'अग्नि, वायु सूर्य' आदि देवों से **देवम्**=ज्ञान की दीप्ति प्राप्त करनेवाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धयत्**=बढ़ाता है। यह संसार एक वृक्ष है। यह हमें सब आवश्यक वस्तुओं को देकर (देवो दानात्) हमारे सब जीवन-व्यवहारों का साधक है (व्यवहार=दिव्), अतः 'देव' है। यह सुन्दरता व हितपूर्वक हमारा पालन करने से 'हिरण्यपर्ण' है। इसकी विविध योनिरूप शाखाओं में हमारे लिए माधुर्य निहित है। गौ हमें दूध देती है। घोड़ा हमारे व्यायाम व आने-जाने का साधन बनता है, भेड़ हमें ऊन प्राप्त कराती है, बकरी सर्वरोगापहारी दूध देती हुई पशम देती है। इस प्रकार ये विविध शाखाएँ हमारे जीवन को मधुर बना रही हैं। मधुर फलोंवाला तो यह वृक्ष है ही। इस संसार-वृक्ष के सूर्यादि सब देव जितेन्द्रिय पुरुष की उन्नति का कारण बनते हैं। २. यह संसार-वृक्ष **अग्रेण**=अग्रभाग से **दिवम्**=द्युलोक को **अस्पृक्षत्**=छूता है, अर्थात् इसका एक प्रान्त (सिरा)

द्युलोक है तो यह **आ अन्तरक्षिम्**=चारों ओर इस अन्तरिक्ष को व्याप्त किये हुए है और **पृथिवीम्**=पृथिवी को **अदृंहीत्**=दृढ़ बना रहा है। इसका मध्यभाग अन्तरिक्ष है और इसका (उपरेण) दूसरा सिरा यह दृढ़ पृथिवीलोक है। इस प्रकार त्रिलोकी से बना हुआ यह संसारवृक्ष है। ३. यह संसार-वृक्ष **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य वेतु**=धन के आधारभूत उस प्रभु का प्रजनन=प्रादुर्भाव करनेवाला हो। **यज**=हे जीव! तू उस प्रभु से अपना मेल करनेवाला बन। एतदर्थ तू यज्ञशील हो, दान देनेवाला बन।

भावार्थ—यह 'हिरण्यपर्ण मधुशाख, सुपिप्पल' संसारवृक्ष हमारे लिए वर्धन का कारण बने। धन के सेवन में धन के आधारभूत प्रभु का प्रादुर्भाव करनेवाला हो।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

देवं बर्हिः

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्द्धयत्।

स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीꣳष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२१॥

१. **वारितीनाम्**='वे प्रभु वरणीय हैं, उस प्रभु में (वारि इतिर्गतिर्येषां) **इति**=गतिवाले, विचरनेवाले, प्रभुभक्तों का **देवम् बर्हिः**=दिव्य गुणों से पूर्ण प्रकाशमय, वासनाशून्य हृदय **देवम्**=दानशील, द्युतिवाले, अपनी ज्ञानज्योति से औरों का दीपन करनेवाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धयत्**=बढ़ाता है। वस्तुतः वासनाशून्य हृदय हमारी सब उन्नतियों का साधक है। २. यह वासनाशून्य हृदय उस जीव को बढ़ाता है जो **स्वासस्थम्**=(सुखेन आसनेन तिष्ठति) सदा सुखासन पर स्थित होने का अभ्यास करता है, सब इन्द्रियों को उत्तम बनानेवाले (सु) आसनों को करता है (आस+स्थ), और इन आसनों का अभ्यास करते हुए **इन्द्रेण आसन्नम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का समीपस्थ उपासक बनता है। ३. इस प्रकार 'आसनों का अभ्यास' व 'प्रभु का उपासन' करने से यह **अन्या बर्हीषि**=अन्य निर्वासन हृदयों को **अभ्यभूत्**=जीत लेता है, उनका अभिभव करनेवाला होता है, अर्थात् इसका हृदय सबसे अधिक वासनाशून्य हो जाता है। ४. यह वासनाशून्य हृदय **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का **वेतु**=प्रजानन व प्रादुर्भाव करे, अर्थात् धन के अन्दर विचरण करते हुए भी प्रभु को भूल न जाए। **यज**=हे जीव! तू यज्ञशील बन और उस प्रभु से अपना सम्पर्क बना।

भावार्थ—आसनों के अभ्यास व उपासना से हमारा हृदय वासनाशून्य हो। यह हृदय प्रभु को कभी भुलानेवाला न हो।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

स्विष्टकृद् अग्निः

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्द्धयत्।

स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२२॥

१. यह **अग्निः**=यज्ञ में समाहित किया गया अग्नि **देवः**=हमें सब कुछ देनेवाला है, रोगादि के निवारण से दिव्य गुणोंवाला है। **स्विष्टकृत्**=यह हमारे सब उत्तम इष्टों को सिद्ध करनेवाला है (एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्)। यह यज्ञाग्नि **देवम्**=यज्ञादि उत्तम व्यवहारों के करनेवाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धयत्**=बढ़ाता है, उसकी उन्नति का कारण बनता है। २. **स्विष्टम् कुर्वन्**=हमारे उत्तम इष्टों को सिद्ध करता हुआ **स्विष्टकृत्**=यह कल्याण

करता हुआ अग्नि **अद्य**=आज हमारे **स्विष्टम्**=उत्तम इष्ट को **करोतु**=सिद्ध करे, यह हमें नीरोगता व सौमनस्य को देनेवाला हो। ३. **वसुवने**=धन के सेवन में भी **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत, सब धनों के स्वामी उस प्रभु को **वेतु**=हममें प्रादुर्भूत करे। **यज**=हे जीव! तू उस प्रभु के साथ सम्पर्क बनानेवाला हो, यज्ञशील बन, दान देनेवाला बन।

भावार्थ—हम प्रतिदिन अग्निहोत्र में अग्न्याधान करते हुए अपने इष्ट नैरोग्य व सौमनस्य को सिद्ध करें। संसार में विचरते हुए प्रभु को भूल न जाएँ। सदा यज्ञशील बने रहें।

ऋषिः—**अश्विनौ**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**कृतिः**। स्वरः—**निषादः**।

छाग बन्धन

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्। सूपस्थाऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन॥२३॥

१. **अयम्**=इस **यजमानः**=यज्ञ के स्वभाववाले व्यक्ति ने **अद्य**=आज **होतारम्**=इस सृष्टि के सर्वोत्तम पदार्थों को देनेवाले **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु का **अवृणीत**=वरण किया है। यह **पंक्तिः पचन्**=पक्तव्य पदार्थों का परिपाक कर रहा है। इसने शरीर को दृढ़ बनाया है और मस्तिष्क को ज्ञान से परिपक्व किया है। **पुरोडाशम् पचन्**=(आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः। —कौ० १३.५) इसने अपनी आत्मा का भी ठीक परिपाक किया है। आध्यात्मिकता का पोषण ही आत्मा का परिपाक है। **इन्द्राय**=इन्द्रशक्ति के विकास के लिए **छागम् बध्नन्**=वासनाओं के छेदन-भेदन का प्रबन्ध किया है। वासनाओं के छेदन से ही आत्मशक्ति का विकास होता है। ३. **छागेन**=इस वासनाओं के छेदन-भेदन में **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **अद्यः** आज=वासना विनाश हो जाने पर **देवः**=वह ज्योतिर्मय **वनस्पतिः**=ज्ञान की रश्मियों का पति प्रभु **सूपस्था**=सुगमता से उपस्थान के योग्य **अभवत्**=हो गया है। वासनाओं ने ही वस्तुतः ज्ञान पर वह परदा डाला हुआ था, जिससे हमें उस प्रभु की ज्योति का दर्शन नहीं हो रहा था। ४. आज वासना-विनाश द्वारा प्रभु-दर्शन होने पर यह भक्त **तम्**=उस प्रभु को **मेदस्तः**=बड़े स्नेह से **अघत्**=खाता है, अर्थात् अपने अन्दर ग्रहण करता है। वस्तुतः यह प्रभु का, ब्रह्म का भक्षण ही 'ब्रह्मचर्य' है, ब्रह्म का चरना। ५. **प्रतिपचता**=इसी उद्देश्य से इसने एक-एक शक्ति का ठीक से परिपाक किया है। **अग्रभीत्**=उन शक्तियों का इसने ग्रहण किया है और **पुरोडाशेन**=आत्मभाव से **अवीवृधत्**=बढ़ा है।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुष प्रभु का ही वरण करता है। वासना-विनाश से वह प्रभु सुगमता से उपस्थान के योग्य होता है। वह अपनी शक्तियों का ठीक से परिपाक करता है।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**स्वराड्जगती**। स्वरः—**निषादः**।

ऋषि गौः

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्।
गायत्रीं छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥२४॥

१. गतमन्त्र के अनुसार वासना को विनष्ट करनेवाला व्यक्ति ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करता है। विद्या की अधिदेवता को अपनानेवाला यह व्यक्ति 'सरस्वती' नामवाला हो जाता है। यह **होता**=सदा दानपूर्वक अदन करनेवाला **यक्षत्**=अपने साथ उस प्रभु को संगत करता

है, जो (क) **समिधानम्**=सूर्यादि सब लोक-लोकान्तरों को दीप्त कर रहे हैं, (ख) **महद्यशः**=महनीय यशवाले हैं, (ग) **सुसमिद्धम्**=ज्ञान से सम्यक् दीप्त हैं, (घ) **वरेण्यम्**=वरने के योग्य हैं, प्रकृति की तुलना में प्रभु का ही वरण ठीक है प्रकृति-वरण से प्रभु की प्राप्ति नहीं होती, परन्तु प्रभु-वरण से प्रकृति तो मिल ही जाती है, (ङ) **अग्निम्**=वे प्रभु हमारी सब उन्नतियों के साधक हैं, (च) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं, (छ) **वयोधसम्**=हममें उत्कृष्ट आयु को धारण करनेवाले हैं। २. इस होता को चाहिए कि (क) **गायत्रीम् छन्दः**=प्राणरक्षा की (गयाः प्रणाः, तान् तत्रे) प्रबल इच्छा को, (ख) **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति को, (ग) **त्र्यविम्**=शरीर, मन व बुद्धि तीनों की रक्षा करनेवाली वेदवाणी को, (घ) **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=धारण करता हुआ **आज्यस्य वेतु**=शक्ति का पान करे, शक्ति को अपने में सुरक्षित करे। शक्ति की रक्षा से ही प्राणरक्षा होगी, इन्द्रियों का सामर्थ्य प्राप्त होगा, शरीर, मन व बुद्धि तीनों का रक्षण होगा और जीवन उत्कृष्ट बनेगा। ४. **होतः**=हे दानपूर्वक अदन करनेवाले! **यज**=तू यज्ञशील बन और उस प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ—हम होता बनकर देदीप्यमान प्रभु से अपना मेल बनाएँ। प्राणरक्षा की हमारी प्रबल कामना हो, शरीर, मन व बुद्धि की रक्षा करनेवाली वेदवाणी को हम अपनाएँ।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिगतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

दित्यवाट् गौः

होता॑ यक्षत्तनू॒नपा॑तमु॒द्भिद॒ं यं गर्भ॒मदि॑तिर्द॒धे शुचि॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।
उ॒ष्णिह॒ं छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं दि॑त्य॒वाह॒ं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥२५॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है, उस प्रभु को, जो—(क) **तनूनपातम्**=हमारे शरीर व शक्तियों के विकास को न गिरने देनेवाले हैं, प्रभु स्मरण से शरीर स्वस्थ बना रहता है, (ख) **उद्भिदम्**=वे प्रभु सब विघ्नों को विदीर्ण करके हमारा उत्थान करनेवाले हैं, (ग) ये प्रभु वे हैं **यम्**=जिनको **अदितिः**=न खण्डित होनेवाला, अपने शरीर व मन को रोगों व वासनाओं से आक्रान्त न होने देनेवाला **गर्भं दधे**=अपने में गर्भरूप से धारण करता है, अर्थात् प्रभु का निवास अदिति में होता है, उस पुरुष में जोकि रोगों व वासनाओं से खण्डित न हो, (घ) **शुचिम्**=वे प्रभु पूर्ण पवित्र हैं, हमें पवित्र बनानेवाले हैं, (ङ) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं, (च) **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाले हैं। २. यह होता (क) **उष्णिहं छन्दः**=(उत् स्निह्यति) उत्कृष्ट स्नेह की प्रबल कामना को, (ख) **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय के सामर्थ्य को, (ग) **दित्यवाहं गाम्**=वासनाओं का खण्डन करनेवाली वेदवाणी को, (घ) **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=धारण करने के हेतु से **आज्यस्य वेतु**=शक्ति का पान करे, वीर्य को अपने अन्दर ही सुरक्षित करे। ३. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले तू **यज**=यज्ञशील बन और उस प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ—हम होता बनकर सब उन्नतियों के साधक प्रभु को धारण करें। हमारा स्नेह प्रकृति से न होकर प्रभु से हो। हम वासनाओं का खण्डन करनेवाले वेदज्ञान को अपनाएँ।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृच्छक्वरी**। स्वरः—**धैवतः**।

पञ्चावि गौः

होता॑ यक्षद्वी॒डेन्य॑मीड्ि॒तं वृ॒त्रह॑न्तम॒मिडा॑भि॒रीड्य॑ꣳसहः॒ सोम॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।
अ॒नु॒ष्टुभ॒ं छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं पञ्चा॑वि॒ं गां वयो॒दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥२६॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **यक्षत्**=अपने साथ उस प्रभु को संगत करता है, जो (क) **ईडेन्यम्**=स्तुति के योग्य हैं, (ख) **इडाभिः ईडितम्**=सब वेदवाणियों से स्तुति किये गये हैं **'सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति'** (ग) **वृत्रहन्तमम्**=वासनाओं का सर्वाधिक विनाश करनेवाले हैं, (घ) **ईड्यम् सहः**=स्तुत्य शक्ति के पुञ्ज हैं, (ङ) **सोमम्**=अत्यन्त शान्त है, अर्थात् शक्ति के साथ शान्ति का प्रभु में पूर्ण समन्वय है, इसी से उनकी शक्ति प्रशंसनीय है, (च) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं, (छ) **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाले हैं। २. होता को चाहिए कि उसमें (क) **अनुष्टुभम् छन्दः**=(अनुस्तौति) प्रत्येक सफलता के साथ प्रभु-स्तवन की भावना हो, जिससे उस सफलता का गर्व न हो जाए, उस सफलता को प्रभु से होता हुआ समझकर हम अहंकार न करें, (ख) **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों के सामर्थ्य को (ग) **पञ्चाविम् गाम्**=ज्ञान के द्वारा वासनाओं से बचाकर इस पाञ्चभौतिक शरीर की, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों कर्मेन्द्रियों व पाँचों प्राणों की रक्षा करनेवाली वेदवाणी को तथा (घ) **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधद्**=धारण करने के हेतु से **आज्यस्य वेतु**=शक्ति का पान करे, अपने में शक्ति को सुरक्षित करे। ३. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=यज्ञशील बन, दान देनेवाला बनकर प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ— हम होता बनकर वासनाओं को नष्ट करनेवाले 'वृत्रहन्तम' प्रभु का अपने से मेल बनाएँ। हम प्रत्येक सफलता को प्रभु की शक्ति से होता हुआ समझें। हम उस वेदवाणी को अपनाएँ जो पाँचों इन्द्रियों की रक्षा करनेवाली है।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**स्वराडतिजगती**। स्वरः—**निषादः**॥

त्रिवत्स गौः

होता॑ यक्षत्सुब॒र्हिषं॑ पूष॒ण्वन्त॒ममर्त्यं॑ सीद॑न्तं ब॒र्हिषि॑ प्रि॒ये॒ऽमृतेन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्।
बृ॒हती॑ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं त्रि॒व॒त्सं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥ २७॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **यक्षत्**=अपने साथ उस प्रभु को संगत करता है, जो (क) **सुबर्हिषम्**=उत्तमता से हृदय को वासनाशून्य बनानेवाले हैं, प्रभु नाम-स्मरण के साथ ही हृदय से वासनाएँ नष्ट होनी प्रारम्भ हो जाती हैं, (ख) **पूषण्वन्तम्**=वे प्रभु हमारा उत्तम पोषण करनेवाले हैं (ग) **अमर्त्यम्**=अमरणधर्मा हैं और (घ) **प्रिये**=प्रेम से युक्त, द्वेषादि से शून्य **अमृता**=(अमृते) विषयों के पीछे न मरनेवाले **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **सीदन्तम्**=निवासन करते हुए (ङ) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली, (च) **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाले हैं। २. इस होता को चाहिए कि (क) **बृहतीं छन्दः**=सब प्रकार की वृद्धि की प्रबल भावना को (ख) **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों के सामर्थ्य को (ग) **त्रिवत्सं गाम्**=प्रकृति, जीव व परमात्मा तीनों का प्रतिपादन करनेवाली वेदवाणी को (त्रीन् वदति) अथवा ज्ञान, कर्म व उपासना का प्रतिपादन करनेवाली वेदवाणी को (घ) तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=धारण करने के हेतु से **आज्यस्य वेतु**=शक्ति का पान करे। ३. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले जीव! तू **यज**=यज्ञशील बन। दान देनेवाला बनकर प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ—होता उस प्रभु को अपने साथ संगत करता है जो प्रभु प्रिय, अर्थात् द्वेष से शून्य तथा अमृत, विषयों के पीछे न मरनेवाले वासनाशून्य हृदय में निवास करते हैं।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**स्वराट्शक्वरी**। स्वरः—**धैवतः**॥

तुर्यवाड् गौः

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणाऽऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम्। पङ्क्तिं छन्दऽइहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥२८॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला व्यक्ति **देवीः द्वारः**=दिव्य इन्द्रियों को—जीवनयात्रा के विविध कार्यों व व्यवहारों को सिद्ध करनेवाले इन्द्रियरूप द्वारों को, जो (क) **व्यचस्वतीः**=(अञ्चु गतौ) विशिष्टरूप से अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले हैं तथा (ख) **सुप्रायणाः**=प्रकृष्ट गमनवाले हैं (ग) **ऋतावृधः**=सत्य व यज्ञ का वर्धन करनेवाले हैं, उन इन्द्रियों को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है, जो (क) **हिरण्ययीः**=हितरमणीय ज्ञान को प्राप्त करानेवाली हैं। २. इस प्रकार यह होता इन इन्द्रियों को सम्यक्तया नियमित करता हुआ इनके द्वारा उस प्रभु को अपने साथ **यक्षत्**=संगत करता है, जोकि (क) **ब्रह्माणम्**=(परिवृढं) अत्यन्त बढ़े हुए हैं और इस संसार को बढ़ानेवाले हैं, (ख) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं, तथा (ग) **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाले हैं। ३. यह होता (क) **पंक्तिम् छन्दः**='पाँचभौतिक शरीर को मैं बड़ा ठीक रक्खूँगा, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों व प्राणों को पूर्ण सशक्त बनाऊँगा', इस प्रबल इच्छा को, (ख) **इह**=इस शरीर में **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय के सामर्थ्य को (ग) **तुर्यवाहं गाम्**= उस वेदवाणी को जो कि उसे तुरीयावस्था तक पहुँचाती है, अर्थात् उसे पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक व द्युलोक के विजय के बाद ब्रह्मलोक में पहुँचने के योग्य बनाती है तथा (घ) **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=धारण करने के हेतु से यह प्रयत्न करे कि इसके इन्द्रियद्वार **आज्यस्य व्यन्तु**=तेज को पान करनेवाले बनें, इस शक्ति को शरीर में ही सुरक्षित करें। ये इन्द्रियद्वार संयत होने पर विषय-वासनाओं में न जाएँगे और इस प्रकार शक्ति का रक्षण करनेवाले हो सकेंगे। ४. हे **होतः**=यज्ञशील पुरुष! तू **यज**=उस प्रभु को अपना और इसी उद्देश्य से यज्ञशील बन।

भावार्थ—होता पुरुष अपने इन्द्रियद्वारों को ज्योतिर्मय बनाकर, इनके द्वारा प्रभु की महिमा को देखता हुआ, प्रभु को अपने साथ संगत करे।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**अहोरात्रे**। छन्दः—**निचृदतिशक्वरी**। स्वरः—**पञ्चमः**॥

पष्ठवाड् गौः

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहतीऽउभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम्। त्रिष्टुभं छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज॥२९॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदनशील पुरुष **नक्तोषासा**=उन 'दिन और रात' को अपने साथ **यक्षत्**=संगत करता है जो (क) **सुपेशसा**=(शोभनं पेशो याभ्याम्) उत्तम रूप को देनेवाले हैं, दिन क्रिया द्वारा शक्ति देकर रूप का वर्धन करता है तो रात्रि रमयित्री होती हुई सारी तोड़-फोड़ को फिर से ठीक करके सौन्दर्य प्रदान करती है। (ख) **सुशिल्पे**=(यद्वै प्रतिरूपं तच्छिल्पम्) एक-दूसरे की प्रतिरूप हैं, दिन प्रकाशमय है तो रात्रि अन्धकारमय, दिन क्रिया करने का समय है तो रात्रि विश्रामस्थली है, दिन का ईश 'सूर्य' है तो रात्रि का ईश 'चन्द्र' है। (ग) **बृहती**=ये दिन-रात दोनों ही हमारा वर्धन करनेवाले हैं, **न**=और (च) ये **उभे**= दोनों ही **दर्शते**=दर्शनीय हैं, 'दिन' सूर्य के प्रकाश से देदीप्यामान है तो 'रात्रि' को चन्द्र

व तारे दर्शनीय बना रहे हैं। २. ऐसे दिन और रात को होता अपने साथ संगत करता है और साथ ही इन दिन व रात में उस प्रभु की महिमा को देखता हुआ उस प्रभु को भी अपने साथ संगत करता है, जो प्रभु (क) **विश्वम्**=(विशति) इस ब्रह्माण्ड के कण-कण में प्रविष्ट होकर इस संसार-यन्त्र का सञ्चालन कर रहे हैं, (ख) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं तथा (ग) **वयोधसम्**=उत्कृष्ट आयुष्य को धारण करानेवाले हैं। ३. यह होता (क) **त्रिष्टुभम् छन्दः**=(त्रि स्तुभ) मैं 'काम, क्रोध व लोभ' इन तीनों को रोक दूँगा, इस प्रबल भावना को, (ख) **इह इन्द्रियम्**=इस मानव-जीवन में इन्द्रियों के सामर्थ्य को, (ग) **पष्ठवाहम् गाम्**=उस वेदवाणी को जो अपनी पीठ पर कर्म के भार को उठाये हुए है, अर्थात् **'कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि'** इस वाक्य के अनुसार सारे कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करनेवाली है तथा (घ) **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=धारण करने के हेतु से प्रयत्न करता है कि उसके लिए ये दिन और रात **आज्यस्य**=शक्ति का **वीताम्**=पान करानेवाले हों, अर्थात् होता दिन-रात शक्ति के पान का ध्यान करता हुआ ही अपने जीवन को उत्कृष्ट बना पाएगा। ५. **हे होतः**=यज्ञशील पुरुष! तू **यज**=उस प्रभु के साथ संग बना और यज्ञशील बन।

भावार्थ—होता पुरुष के लिए दिन-रात बड़े सुन्दर होते हैं, ये उसे सौन्दर्य प्रदान करते हैं। यह इनके चक्र में प्रभु के रचना-सौन्दर्य को देखता हुआ प्रभु को पूजता है, उसके साथ अपना सम्पर्क बनाता है और उसके प्रति अपना अर्पण कर देता है।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**अश्विनौ**। छन्दः—**निचृदतिशक्वरी**। स्वरः—**पञ्चमः**।

अनड्वान् गौः

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम्।
जगतीं छन्दऽइन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्धीतामाज्यस्य होतर्यज॥३०॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **देव्या होतारा**=प्राणापान को **यक्षत्**=अपने साथ जोड़ता है। उन प्राणापानों को जोकि (क) **प्रचेतसा**=उसे प्रकृष्ट ज्ञानी बनानेवाले है, (ख) **कवी**=जो क्रान्तदर्शी हैं। वस्तुतः प्राणापान की साधना से बुद्धि इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि वह गहरे-से-गहरे विषय को भी समझने के योग्य होता है और साधक प्रकृष्ट ज्ञानवाला बनता है, (ग) ये प्राणापान **देवानाम्**=विषयों को ग्रहण करानेवाली इन्द्रियों के **उत्तमं यशः**=उत्तम यश हैं। इनके ही कारण ये इन्द्रियाँ अपने कार्यों को कर पाती हैं, (घ) **सयुजा**=ये प्राणापान सयुज हैं। प्राण अपान के साथ मिलकर चलता है और अपान प्राण के साथ। ये शरीर में सदा साथियों की भाँति 'सयुज्' हैं। २. यह होता इन दैव्य होताओं, अर्थात् प्राणापान की साधना के द्वारा उस प्रभु को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है जोकि **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं और **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाले हैं। ३. **जगतीं छन्दः**=क्रियाशीलता की इच्छा को, **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों के सामर्थ्य को, **अनड्वाहम् गाम्**=उस वेदवाणी को, जो संसार-शकट का वहन करनेवाली है। मनुष्य **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=धारण के हेतु से **आज्यस्य**=शक्ति का **वीताम्**=पान करे। प्राणापान के द्वारा शक्ति का संयम होने पर ही 'जगती छन्द' इत्यादि सब बातों का सम्भव होगा। ४. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले **यज**=तू यज्ञशील बन।

भावार्थ—होता पुरुष के लिए प्राणापान प्रकृष्ट ज्ञान को देनेवाले होते हैं। ये उसके अन्दर क्रियाशीलता को उत्पन्न करते हैं, इन्द्रियों के सामर्थ्य को देते है, जीवन-यात्रा को

पूर्ण करने की क्षमता देते हैं और उसके जीवन को उत्कृष्ट बनाते हैं।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**वाण्यः**। छन्दः—**भुरिक्शक्वरी**। स्वरः—**धैवतः**॥

धेनु गौः

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्मही: पतिमिन्द्रं वयोधसम्। विराजं छन्दऽइहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३१॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **तिस्त्रो देवीः भारतीः**=भारती, सरस्वती व इडा नामक तीन देवियों को **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है जो देवियाँ—(क) **पेशस्वतीः**=उत्तम रूपवाली हैं, जिनकी स्थिति से मनुष्य का स्वरूप बड़ा उत्तम प्रतीत होता है, (ख) **हिरण्ययीः**=जो अत्यन्त ज्योतिर्मय हैं, इनमें से एक मस्तिष्क को दीप्त करती है (भारती) तो दूसरी मन को (सरस्वती) तथा तीसरी शरीर को ठीक रखती है (इडा), (ग) **बृहतीः**= ये उसका वर्धन करनेवाली हैं और **महीः**=उसको महत्त्व प्राप्त कराती हैं। २. यह होता इन देवियों के सम्पर्क के द्वारा उस प्रभु को अपने साथ संगत करता है जो (क) **पतिम्**=हम सबके स्वामी व रक्षक हैं (ख) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं, और (ग) **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाले हैं। ३. **विराजं छन्दः**='मैं इस जीवन में खूब देदीप्यामान होऊँ (राज् दीप्तौ, अथवा राज् To regulate) अथवा जीवन को बड़ा व्यवस्थित करूँ', इस इच्छा को, **इह**=इस जीवन में **इन्द्रियम्** =प्रत्येक इन्द्रिय के सामर्थ्य को, **धेनुम् गाम्**=ज्ञानदुग्ध के द्वारा वर्धन करनेवाली वेदवाणी को, **न**=और **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**='धारण करता हुआ यह होता बने' इसके लिए **आज्यस्य व्यन्तु**=ये तीनों देवियाँ शक्ति का पान करें, अर्थात् इनके द्वारा शक्ति का शरीर में ही व्यय हों। अंग-प्रत्यंग में व्याप्त होकर यह शक्ति उसे सुन्दर रूप दे। ४. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=यज्ञशील बन और उस प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ—होता का जीवन 'भारती, सरस्वती व इडा' के कारण बड़ा सुन्दर हो जाता है। ये देवियाँ उसके जीवन को ज्योतिर्मय बना देती हैं।

ऋषि—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिक्शक्वरी**। स्वरः—**धैवतः**।

उक्षा गौः

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनꣳरूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्दऽइन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥३२॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला व्यक्ति **यक्षत्**=अपने साथ उस प्रभु को संगत करता है, जो (क) **सुरेतसम्**=वासना-विनाश के द्वारा हमारे **रेतस्**=(वीर्य) को शोभन बनाये रखते हैं, उस प्रभु के नामस्मरण से रेतस् में वासनाजनित उष्णता उत्पन्न नहीं होती, (ख) **त्वष्टारम्**=जो हममें दिव्य गुणों का निर्माण करनेवाले हैं अथवा हमारे मस्तिष्कों को ज्ञानोज्ज्वल करनेवाले हैं, (ग) **पुष्टिवर्द्धनम्**=हमारी पुष्टि का वर्धन करनेवाले हैं, (घ) **रूपाणि बिभ्रतम्**= अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सौन्दर्य को धारण करनेवाले हैं (ङ) **पृथक् पुष्टिम्**=अलग-अलग एक-एक अङ्ग को पुष्ट करनेवाले हैं, (च) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली हैं, और (छ) **वयोधसम्** =उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाले हैं। २. **द्विपदम् छन्दः**=(द्वाभ्यां पद्यते) 'मैं ज्ञानमार्ग व कर्ममार्ग दोनों का समन्वय करके चलूँगा', इस प्रबल इच्छा को, **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय के सम्पर्क को, **उक्षाणं गाम्**=सुखों का सेचन करनेवाली वेदवाणी को **न**=और **वयः**=उत्कृष्ट जीवन

को **दधत्**=धारण करने के हेतु से **आज्यस्य वेतु**=यह त्वष्टा देव इस होता में सोम का (शक्ति का) पान कराए। इसके शरीर में ही रेतस् का व्यापन हो। ३. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=यज्ञशील बन और उस प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ—त्वष्टादेव हमें सुरेतस् बनाएँ, हमारे जीवनों को सुन्दर व पुष्ट करें।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृदत्यष्टिः**। स्वरः—**गान्धारः**।

वशा वेहत् गौः

होता॑ यक्षद्वन॒स्पति॑ꣳशमि॒तार॑ꣳशतक्र॒तु॑ꣳहिर॑ण्यपर्णमु॒क्थिन॑ꣳरश॒नां बिभ्र॑तं व॒शिं भग॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्। क॒कुभं॑ छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं व॒शां वे॒हत॑ं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३३॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला **यक्षत्**=अपने साथ उस विद्वान को संगत करता है, जोकि **वनस्पतिम्**=ज्ञान की किरणों का पति है, **शमितारम्**=शान्ति प्रदाता व शान्तस्वभाव है, **शतक्रतुम्**=सैकड़ों प्रज्ञानों व कर्मोंवाला है, **हिरण्यपर्णम्**=हितरमणीय ज्ञान से पालन व पूरण करनेवाला है, **उक्थिनम्**=स्तोत्रोंवाला है, प्रभु का स्तवन करनेवाला है, **रशनां बिभ्रतम्**=मेखला को धारण करनेवाला है, अर्थात् दृढ़ निश्चयी है, **वशिम्**=अपनी वासनाओं को वशीभूत करनेवाला है, **भगम्**=ऐश्वर्यशाली है अथवा (भज सेवायाम्) सेवा की वृत्तिवाला है, **इन्द्रम्**=शक्तिशाली है और आसुर भावनाओं का विद्रावण करनेवाला है। **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाला है। ऐसे विद्वान् के सम्पर्क में आकर वह होता भी इसी प्रकार के जीवनवाला बनता है। २. **ककुभं छन्दः**='मैं शिखर पर पहुँचूँगा', इस इच्छा को, **इह**=इस मनाव-जीवन में **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों के सामर्थ्य को, **वशां वेहतं गाम्**=उस वेदवाणी को जो वशा व वन्ध्या है, अर्थात् मनुष्य को फल की इच्छा से ऊपर उठकर कार्य करनेवाला बनाती है तथा **वेहतम्**=गर्भोपधातिनी, सब बुराइयों को गर्भावास्था में ही समाप्त करनेवाली है (to nip the evil in the bud) तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=धारण के हेतु से यह होता **आज्यस्य वेतु**=शक्ति का पान करे, शक्ति को अपने शरीर में व्याप्त करे। ३. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=यज्ञशील बन और उस प्रभु के साथ अपने को संगत कर।

भावार्थ—विद्वान्, शान्त, यज्ञशील पुरुषों का संग हमारे जीवन को भी उत्कृष्ट बनाये। हम उन्नति के शिखर पर पहुँचने की कामना करें। फल की इच्छा से ऊपर उठकर कर्तव्य बुद्धि से कर्म करें और बुराई को गर्भ में ही समाप्त करने का ध्यान करें।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**अतिशक्वरी**। स्वरः—**पञ्चमः**।

ऋषभ गौः

होता॑ यक्षत् स्वाहाकृती॒रग्निं॑ गृ॒हप॑तिं पृथ॒ग्वरु॑णं भेष॒जं क॒विं क्ष॒त्रमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्। अति॑च्छन्दस॒ꣳ छन्द॑ऽइ॒न्द्रिय॑ं बृ॒हदृ॑ष॒भं गां वयो॒ दध॒द्व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३४॥

१. **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला व्यक्ति **यक्षत्**=अपने साथ संगत करता है। किन बातों को? (क) **स्वाहाकृतीः**=(सु आह कृति) वाणी से उत्तम शब्दों को बोलने की क्रियाओं को, या (स्व+हा=कृति) स्वार्थत्याग के कर्मों को, (ख) **गृहपतिं अग्निं पृथक्**=रोगादि के निवारण से तथा वायु-शुद्धि से घरों के रक्षक यज्ञियाग्नि को अलग-अलग, अर्थात् होता के घर का प्रत्येक सभ्य अपने-अपने अंश को अग्निहोत्र में डाले, (ग)

वरुणम्=द्वेष-निवारण की देवता को जोकि द्वेषजन्य विषों को पैदा न होने देने के कारण शरीर के रोगों का **भेषजम्**=औषध है तथा मस्तिष्क में **कविम्**=क्रान्तदर्शिता को प्राप्त करानेवाला है, (घ) **इन्द्रः**=सब आसुरवृत्तियों का विद्रावण करनेवाले इन्द्र को जो **क्षत्रम्**=सब क्षतों से बचानेवाला है और इस प्रकार **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाला है। २. **अतिच्छन्दसं छन्दः**=भौतिक इच्छाओं से ऊपर उठने की इच्छा को, **बृहद्**=वृद्धि के कारणभूत **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों के सामर्थ्य को, **ऋषभं गाम्**=(ऋष गतौ) 'गति की प्रेरणा देनेवाली वेदवाणी को **दधत्**=धारण करनेवाला यह होता बने' इसलिए 'वरुण, इन्द्र' आदि इसके लिए **आज्यस्य व्यन्तु**=सोमशक्ति का शरीर में ही व्यापन करनेवाले बनें। ३. हे **होतः**=दानशील पुरुष! तू **यज**=यज्ञशील बन।

भावार्थ—हममें स्वार्थत्याग की भावना हो, हमारे घर का प्रत्येक सभ्य यज्ञ के स्वभाववाला बने। हम द्वेष से दूर रहकर स्वस्थ व ज्ञानी बनें, भौतिक इच्छाओं से ऊपर उठें।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

गायत्री छन्द

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्द्धयत्।
गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥३५॥

१. **देवम् बर्हिः**=दिव्य गुणों को धारण करनेवाला वासनाशून्य हृदय **वयोधसम्**=उत्कृष्ट आयुष्य को धारण करनेवाला है। हृदय के अच्छा होने पर जीवन भी अच्छा होता है। २. यह हृदय **देवम्**=ज्ञान की ज्योति से जगमगानेवाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धयत्**=बढ़ाता है। हृदय की पवित्रता ही सब प्रकार की वृद्धि का मूल है। ३. **गायत्र्या छन्दसा**=प्राणशक्ति की रक्षा की प्रबल इच्छा के द्वारा **इन्द्रियम्**=वीर्य व इन्द्रियों के सामर्थ्य को, **चक्षुः**=दृष्टिशक्ति को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=स्थापित करता हुआ, यह पवित्र हृदय **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु को **वेतु**=प्रजनन करे 'प्रभु-भावना' को अपने में विकसित करे। ४. हे **होतः**=दानशील पुरुष! तू **यज**=इस पवित्र हृदय के द्वारा उस प्रभु का अपने-आप संगम कर, प्रभु की पूजा करनेवाला बन, उसके प्रति अपना अर्पण कर दे।

भावार्थ—दिव्य हृदय प्रभु-प्राप्ति का प्रथम साधन है। प्रभु-प्राप्ति के लिए साधना का प्रारम्भ वहीं से होता है कि हम हृदय को वासनाशून्य बनाएँ।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

उष्णिक् छन्द

देवीर्द्वारो वयोधसꣳशुचिमिन्द्रमवर्द्धयन्।
उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥३६॥

१. **देवीः द्वारः**=दिव्य गुणोंवाले, व्यवहारों को उत्तमता से सिद्ध करनेवाले (दिव व्यवहार) ये इन्द्रियद्वार **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले **शुचिम्**=पवित्र **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धयन्**=बढ़ाते हैं। सब इन्द्रियाँ—ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ पवित्र जीवनवाले पुरुष को बढ़ानेवाली होती है। २. **उष्णिहा छन्दसा**=(उत् स्निह्यति) उत्कृष्ट स्नेह की प्रबल कामना के साथ-साथ (क) **इन्द्रियम्**=वीर्य को **प्राणम्**=पाँचों इन्द्रियों की शक्ति को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=स्थापित

करते हुए (दधतः) **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत उस प्रभु को **व्यन्तु**=प्रादुर्भूत करें, सब द्वार उस प्रभु का स्मरण करनेवाले हों। ३. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=उस प्रभु के साथ अपना मेल बना, इसके लिए तू यज्ञशील बन।

भावार्थ—सब इन्द्रियद्वारों की पवित्रता तथा हीन स्नेह से ऊपर उठना, हमें प्रभु की ओर ले-आता है। प्रकृति व प्रभु में हमारा स्नेह प्रभु के लिए हो, हम प्रकृति की ओर झुकाववाले न हों।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिगतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

अनुष्टुप् छन्द

देवीऽउषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥३७॥

१. **उषासानक्ता**=उषा और रात **देवी**=हमारे सब व्यवहारों के साधक हैं, ये **देवी**=देदीप्यमान होते हुए **देवम्**=दिव्य गुणों को अपनानेवाले **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले **देवम्**=ज्ञान से देदीप्यमान **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धताम्**=बढ़ाते हैं। २. **अनुष्टुभा छन्दसा**=प्रत्येक कार्य में उस-उस सफलता के लाभ के साथ प्रभु-स्तवन (अनु-स्तु) की प्रबल कामना से **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों के सामर्थ्य को **बलम्**=बल को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=(दधत्यौ-म०) धारण करते हुए ये दिन-रात **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत परमात्मा का **वीताम्**=प्रजनन करें, प्रभु-भावना को जागरित व विकसित करें। हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **यज**=दानशील बनकर उस प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ—'दिन-रात को ज्ञान-प्राप्ति द्वारा दीप्त बनाना और प्रत्येक कर्म में सफलता के साथ प्रभु का स्मरण करना, जिससे उस सफलता का गर्व न हो जाए' यह प्रभु-प्राप्ति का तीसरा साधन है।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिगतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

बृहती छन्द

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्।
बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳश्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥३८॥

१. **देवी**=दिव्य गुणों से युक्त **जोष्ट्री**=सब व्यवहारों के साधक दिन व रात **वसुधिती**=सब वसुओं के निवास के लिए आवश्यक तत्त्वों का धारण करनेवाले हैं। ये **देवी**=देदीप्यामान होते हुए **देवम्**=ज्ञान से दीप्त **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धताम्**=बढ़ानेवाले हों। २. **बृहत्या छन्दसा**=(बृहि वृद्धौ) बढ़ने की प्रबल भावना के साथ **इन्द्रियम्**=वीर्य को **श्रोत्रम्**=श्रवणशक्ति को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=(दधत्यौ) धारण करते हुए ये दिन-रात **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धनों के आधारभूत उस प्रभु का **वीताम्**=प्रजनन करें, उस प्रभु की भावना को इस पुरुष के हृदय में विकसित करें। हे **होतः**=दानशील! तू **यज**=यज्ञशील बन और उस प्रभु से अपना मेल बढ़ा।

भावार्थ—'दिन-रात आगे बढ़ने की भावना' हमें उत्कर्ष की ओर ले-जाकर प्रभु के समीप प्राप्त करानेवाली होती है। हम अपने कानों से दिन-रात प्रभु की महिमा का श्रवण करें और वैसा ही बनने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृच्छक्वरी**। स्वरः—**धैवतः**।

पंक्ति छन्द

देवीऽऊर्जाहुतीदुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्।
पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳशुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥३९॥

१. **देवी**=ये दिव्य गुणयुक्त **ऊर्जाहुती**=अन्न व रस की आहुति देनेवाले, सब अन्न-रसों को प्राप्त करानेवाले **दुघे**=अन्न-रस के द्वारा हमारा पूरण करनेवाले **सुदुघे**=अन्न का उत्तमता से पूरण करनेवाले द्युलोक व पृथिवीलोक **पयसा**=अन्न आदि के द्वारा आप्यायन से (पयसा=अप्यायनेन) **इन्द्रं देवम्**=इस ज्ञानदीप्त जितेन्द्रिय पुरुष को **देवी**=सब अन्नों के देनेवाले होकर **अवर्द्धताम्**=बढ़ाते हैं। २. **पङ्क्त्या छन्दसा**=पाँचों इन्द्रियों व प्राणों को सुरक्षित करने की प्रबल कामना के साथ **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय के सामर्थ्य को **शुक्रम्**=वीर्य को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=धारण करती हुई **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधरभूत परमात्मा का **वीताम्**=प्रादुर्भाव करें, प्रभु-भावना को जागरित करें। ३. हे जीव! तू **यज**=यज्ञशील बन और उस प्रभु से अपना सम्पर्क स्थापित कर।

भावार्थ—द्यावापृथिवी से उत्तम अन्न-रस को प्राप्त करके हम अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों व पाँचों प्राणों को पुष्ट करते हुए संसार में आवश्यक धन का अर्जन करें और प्रभु का स्मरण करें।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**अतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

त्रिष्टुप् छन्द

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्द्धताम्।
त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥४०॥

१. **देवाः**=दिव्य गुणों से युक्त **दैव्या होतारा**=प्राणापान (ऐ० २।४) **देवौ**=नीरोगता इत्यादि से दीप्ति को प्राप्त करानेवाले होकर **देवम्**=दिव्य गुणों को अपनानेवाले, **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले **देवम्**=दान की वृत्तिवाले पुरुष को **अवर्द्धताम्**=बढ़ाते हैं। ३. **त्रिष्टुभा छन्दसा**='काम, क्रोध, लोभ' तीनों को रोक देने की प्रबल भावना के साथ **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों के सामर्थ्य को **त्विषिम्**=दीप्ति को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधत्**=धारण करते हुए ये प्राणापान **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का **वीताम्**=प्रजनन व प्रादुर्भाव करें। इस व्यक्ति के हृदय में प्रभु के स्मरण की भावना बनी रहे और यह भावना उसे सदा धन में आसक्त होने से बचानेवाली हो। ४. हे प्राण साधना करनेवाले पुरुष! तू **यज**=उस प्रभु से अपना मेल बना। प्रभु ही तो तुझे काम, क्रोध व लोभ की विजय में समर्थ करेगा।

भावार्थ—हम प्राणसाधना के द्वारा कामादि वासनाओं पर विजय पाएँ और प्रभु-प्राप्ति के अधिकारी बनें।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिग्जगती**। स्वरः—**निषादः**।

जगती छन्द

देवीस्तिस्त्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्।
जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳशूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४१॥

१. **देवीः तिस्रः**=दिव्य गुणोंवाली तीनों 'भारती, सरस्वती, इडा' **तिस्रः**=तीनों ही **देवीः**=जीवन को प्रकाशमय बनानेवाली हैं। भारती मस्तिष्क को उज्ज्वल करती है, तो सरस्वती वाणी को दीप्त करती है और इडा (=श्रद्धा) हृदय को जगमगा देती हैं। २. ये सब **पतिम्**=इन देवियों की अपने जीवन में रक्षा करनेवाले **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धयन्**=बढ़ाती हैं। ३. **जगत्या छन्दसा**=गतिशीलता की प्रबल भावना के साथ अथवा जगती के हित की भावना से (जगतं छन्दः) **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों के सामर्थ्य को **शूषम्**=शत्रुओं के शोषक बल को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=(दधत्यौ) धारण करती हुई **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का विस्मरण न होने दें। ५. हे जीव! तू **यज**=यज्ञशील बनकर उस प्रभु से अपना मेल बना।

भावार्थ—हमारे जीवन में 'भारती, सरस्वती व इडा' एक विशेष दीप्ति को उत्पन्न करनेवाली हैं। ये हमें शत्रुओं के शोषक बल को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृदतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

विराट् छन्द

देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत्।
विराजा छन्दसेन्द्रियꣳरूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥४२॥

१. **देवः**=अपने ज्ञान से दीप्त तथा अग्नि आदि ऋषियों के हृदयों को ज्ञान से द्योतित करनेवाला **नराशंसः**=सब मनुष्यों से शंसनीय **देवः**=सब-कुछ देनेवाला वह प्रभु, **देवम्**=अपने को ज्ञानादि दिव्य गुणों से युक्त करनेवाले **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले **देवम्**=दानादि गणुयुक्त **इन्द्रम्** =जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धयत्**=बढ़ाता है। **विराजा छन्दसा**='मैं अपने जीवन को विशिष्ट रूप से दीप्त बनाऊँगा अथवा निश्चित रूप से व्यवस्थित (Regulated) करूँगा', इस भावना के द्वारा **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय के सामर्थ्य को **रूपम्**=सौन्दर्य को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=धारण करता हुआ प्रभु ऐसी कृपा करे कि **वसुवने**=धन के सेवन में भी **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का **वेतु**=यह जितेन्द्रिय पुरुष पान करे, प्रजनन करे, अपने हृदय में आविर्भाव करे। ३. हे जीव! तू **यज** =यज्ञशील बन और उस प्रभु से अपना मेल कर।

भावार्थ—हम अपने जीवन को दीप्त व व्यवस्थित बनाएँ, जिससे इस संसार में विचरते हुए भी इसमें उलझ न जाएँ और प्रभु को विस्मृत न करें।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**निचृदतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

द्विपाद छन्द

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत्।
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥४३॥

१. **देवः**=दिव्य गुणों से युक्त **वनस्पतिः**=ज्ञान की किरणों का पति **देवः**=सब-कुछ देनेवाला प्रभु **देवम्**=दिव्य गुणों को अपनानेवाले **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले **देवम्**=दानशील **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धयत्**=बढ़ाता है। २. **द्विपदा छन्दसा**='न केवल ज्ञानमार्ग को, न केवल कर्ममार्ग को, अपितु ज्ञान व कर्म दोनों मार्गों को व्यवस्थितरूप से अपनाने की प्रबल भावना के साथ' **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय के सामर्थ्य को **भगम्**='ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य' रूप छह-के-छह भगों को **वयः**=

उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=धारण करते हुए प्रभु ऐसी कृपा करें यह जितेन्द्रिय पुरुष **वसुवने**=धन के सेवन में भी **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत प्रभु का **वेतु**=अपने में प्रजनन व प्रादुर्भाव करे। ३. हे जीव! **यज**=तू यज्ञशील बन और प्रभु का अपने साथ मेल बना।

भावार्थ—हम अपने जीवनों में ज्ञानमार्ग व कर्ममार्ग को मिलाकर चलें, 'ज्ञानयोग व्यवस्थिति' ही दैवी संपत्ति का अंश है।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**भुरिगतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

ककुभा छन्द

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्द्धयत्।
ककुभा छन्दसेन्द्रियं यशऽइन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥४४॥

१. **वारितीनाम्**=(वर=वरणीय प्रभु, इति गति) वरणीय प्रभु में गतिवालों का अर्थात्, प्रभु का ध्यान करनेवालों का जो **देवम्**=दिव्य गुणयुक्त **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय होता है, जोकि **देवम्**=दानादि की भावना से युक्त है, वह हृदय **देवम्**=दिव्य गुणयुक्त **वयोधसम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले **देवम्**=दानशील **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धयत्**=बढ़ाता है। २. **ककुभा छन्दसा**=शिखर पर पहुँचने की प्रबल भावना के साथ **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय के सामर्थ्य को **यशः**=यश को **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=धारण करता हुआ, यह वासनाशून्य हृदय **वसुवने**=धन के सेवन में भी **वसुधेयस्य** =धन के आधारभूत प्रभु का **वेतु**=अपने में प्रादुर्भाव करे, अर्थात् इसके हृदय में सदा प्रभु का स्मरण बना रहे। ३. **यज**=हे जीव! तू यज्ञशील बन और उस प्रभु के साथ अपना मेल बना।

भावार्थ—वासनाशून्य हृदय हममें शिखर तक पहुँचने की भावना को धारण कराये और यह भावना हमें प्रभु तक ले-जानेवाली हो।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**स्वराडतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

अतिच्छन्दसा छन्द

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत्।
अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥४५॥

१. **देवः**=दिव्य गुणयुक्त **अग्निः**=यज्ञ के अन्दर आहित किया गया अग्नि **स्विष्टकृत्**=उत्तम इष्टों को सिद्ध करनेवाला है। 'एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्'=यह यज्ञाग्नि इष्टकामों को पूर्ण करनेवाला तो है ही। **देवः**=यह नीरोगता आदि देनेवाला है। यह अग्नि **देवम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्द्धयत्**=बढ़ाता है। २. **अतिच्छन्दसा छन्दसा**='मैं सब इच्छाओं से ऊपर उठ जाऊँ', इस इच्छा के साथ, अर्थात् सब लौकिक कामनाओं से ऊपर उठने की भावना के साथ **इन्द्रियम्**=सब इन्द्रियों के सामर्थ्य को **क्षत्रम्**=क्षतों से त्राण करनेवाले बल को, **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **इन्द्रे**=इस जितेन्द्रिय पुरुष में **दधत्**=धारण करने के हेतु से **वसुवने**=धन के सेवन में **वसुधेयस्य**=धन के आधारभूत परमात्मा का **वेतु**=पान करे, प्रभु की भावना को प्रादुर्भूत व जागरित करे। ३. हे जीव! तू **यज**=यज्ञशील बन और उस प्रभु के साथ अपना मेल बना। ४. इस मन्त्र के साथ अनुयाजप्रैष समाप्त होते हैं। ये मन्त्र निरन्तर प्रेरणा देते हैं कि संसार का कार्य करते हुए भी प्रभु को भूलो नहीं।

भावार्थ—यज्ञाग्नि हमारे सब इष्टों को पूर्ण करे। हम इन यज्ञों को भी अहंकार व

फलेच्छा से ऊपर उठकर करें (सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव) तभी तो हम प्रभु को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**सरस्वती**। देवता—**इन्द्रः**। छन्दः—**आकृतिः**। स्वरः—**पञ्चमः**।

प्रभु-वरण (पुरोडाशपचन)

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम्। सूपस्थाऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन॥४६॥

१. **अयं यजमानः**=इस प्रयाजानुयाज मन्त्रों के प्रैषों, (प्रेरणाओं) के द्वारा प्रभु से मेल के शीलवाले पुरुष ने **अद्य**=आज **होतारम्**=सब-कुछ देनेवाले **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **अवृणीत**=वरा है। २. **पक्तीः**=पक्तव्य पदार्थों का **पचन्**=यह परिपाक करनेवाला बना है। इसने ब्रह्मचर्यपूर्वक शरीर की धातुओं का ठीक परिपाक किया है, आचार्यों के चरणों में बैठकर बुद्धि का भी यह ठीक परिपाक करनेवाला बना है। ३. **पुरोडाशं पचन्**=(आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः) यह आत्मभाव का भी परिपाक करनेवाला हुआ है। इसने आत्मा की भावना को दृढ़ करने के लिए प्रयत्न किया है कि 'मैं आत्मा हूँ, यह शरीर नहीं हूँ'। ४. उस उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाले **वयोधसे इन्द्राय**=परमैश्वर्यवाले प्रभु के लिए, अर्थात् उस प्रभु की प्राप्ति के लिए **छागं बध्नन्**=(छो छेदन) इसने निरन्तर वासनाओं के छेदन का प्रबन्ध किया है। वासनाओं को सदा अपने से दूर करनेवाला बना है। ५. इसी का परिणाम है कि **अद्य**=आज **देवः**=सब दिव्यताओं के पुञ्ज **वनस्पतिः**=ज्ञान की किरणों का स्वामी वह प्रभु इस **छागेन**=वासनाओं के छेदन-भेदन से **वयोधसे**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **सूपस्थाः**=सुगमता से उपस्थान के योग्य **अभवत्**=हुआ है। प्रभु वासनाशून्य है, मैं वासनाशून्य बनकर ही तो प्रभु का उपासक हो सकता हूँ। ६. जीव **पुरोडाशेन**=आत्मभाव की वृद्धि के द्वारा 'अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्' इन शब्दों के अनुसार नित्य अध्यात्म-चिन्तन से **तम् अघत्**=उस प्रभु का भक्षण=ग्रहण करता है। **मेदस्तः**=बड़े स्नेहभाव से **प्रतिपचत**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शक्ति का परिपाक करता है, **अग्रभीत्**=उस प्रभु का ग्रहण करता है और **अवीवृधत्**=आत्मचिन्तन से वृद्धि को प्राप्त करता है। इसके लिए सब प्राकृतिक भोग तुच्छ हो गये हैं। इसने उस 'रस' रूप प्रभु का रसास्वाद जो कर लिया है, अतः यह तो होना ही था।

भावार्थ—हम अपनी शक्तियों का ठीक से परिपाक करें, अपने को प्रभु-प्राप्ति के योग्य बनाएँ।

नोट—अगला अध्याय 'आप्री' संज्ञक मन्त्रों से प्रारम्भ होता है। इन मन्त्रों में भक्त अपने कर्मों से (आ सर्वथा प्री उस प्रभु को प्रीणत) करता है। ४४ बार उस प्रभु से अपने मेल का संकल्प करके उसने ऐसा करना ही था।

इत्यष्टाविंशोऽध्यायः॥